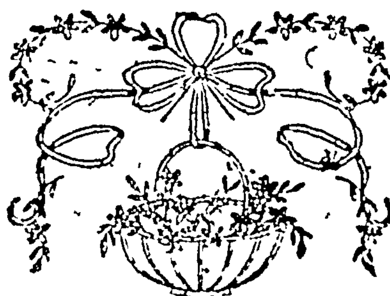


मुद्रकः—श्री विजय लक्ष्मी विलास प्रेस,
टौन हाल रोड, बंगलोर सिटी.

भूमिका

प्र[illegible]

[illegible] विहार करके [illegible] प्रयोगोंके [illegible] प्रसन्नता [illegible]

[illegible] किया था [illegible]

अद्वितीय संग्रह हमें येन केन प्रकारेण उपलब्ध हुआ अत: यह मंडल संग्राहक मुनि श्री का बड़ा आभारी है तथा वक्ता श्री सौभाग्य मलजी म० कविरत्न सूर्यमुनि म० हिन्दी महाकवि मैथिली शरण गुप्त तथा अन्यान्य कवियों को धन्यवाद देते हैं व उपकार मानते हैं।

सभी कवियों के नाम अंकित न करने में स्थानाभाव एवं पूर्ण रुपेण मालुम न होने से असमर्थ हुए अतः यह मंडल क्षमा प्रार्थी है।

आशा करते हैं कि इस पुस्तक की मौलिकता का आद्योपांत अवलोकन कर सहृदय व्यक्ति अवश्यमेव अपनावेंगे यही मनोकामना है इस पुस्तक का संशोधन कार्य पं. वसंतकुमारजी जैन ने किया था किन्तु कारण वशात् संशोधन कार्य समाप्त न होने के पूर्व ही अन्यग्राम में चले जानेके कारण यदि किसी प्रकार की त्रूटियां एव अशुद्धियां रह गई होतो कृपया मंडल को सूचित करें ता कि द्वितीयावृत्तिमें शुद्ध करके छपानेका ध्यान रहे।

भवदीय:—श्री धर्मदास जैन मित्र मंडल



श्रीमान् बालचन्दजी हंसराजजी मलैचा.

मु. [illegible] (मारवाड) हाल मु. फारमफुड़ा

[illegible] वालों की तरफ से अमूल्य भेंट





हरिगीत सुमन सञ्चय

संग्राहक की प्रार्थना

वि द्वान जन जीवन निराली आपकी अनुपम पुरी ।
न-य नीति संगत वस्तुतः लघु लालिमा मय वंसुरी ॥
य-दि आपका इसमें न हो अपराध तो अपनाइये ।
मुनि-संग्रहित संचय सुमन को पूज्य पद निपजाइये ॥

एकता १

बिन एकता संसार में पाता विजय कोई नहीं ।
बिन एकता मन काय वाचा, मोक्ष भी मिलता नहीं ॥
है कौनसा संसार सुख वो वश जिसे करती नहीं ।
आतंक भी है कौनसा बस वो जिसे हरती नहीं ॥

२

है प्राण लेती सर्प के भी संघ वर कीडी अहो ।
यदि संघयुत होवें मनुज तो क्या न कर सकते कहो॥
देखो विदेशी राज्य करते एकता के भाव से ।
ठोकरें खाते हो उनकी आपतो तद्भावसे ॥

३

बिन एकता के हाय हमपर जुल्म यवनों ने किया ।
दें दोष हम किसको हमारी फूट ने सब कुछ किया ॥
यदि एकता होती हृदय में हा! हमारे लेश भी ।
तो स्वर्ग के ही तुल्य होता यह हमारा देश भी ॥

४

राजत्व यवनों का हमारे हिन्द में जब से हुवा ।
अन्याय भारत वासियों के धर्मपर तब से हुवा ॥
इस आर्य मेदिनि में अनार्यों ने चरण ज्यों ज्यों धरे।
देवालयों को ही उन्होंने नष्ट है त्यों त्यों करे ॥

५

पर खास उनमें भी अमल्ल जुल्म जैनों पर किये ।
भंडार फूंके पुस्तकों के गर्म पानी के लिये ॥
हा! निष्ठुरों ने आ यहां जिनमूर्तियां खण्डित करीं ।
जिन मंदिरों की वस्तुओं से मस्जिदें मण्डित करीं ॥

६

हां, हिन्दवासी एक हो पुरुषार्थ जो करते सभी ।
अन्याय भारतवर्ष में क्या फेर वे करते कभी ?
अपमान यवनों से हमें विन एकता सहना पड़ा ।
जो संप कर पुरुषार्थ करते सौख्य वे पाते बड़ा ॥

७

इस भांति यवनों से हमारी बहुत सी हानी भई ।
जीते दिवालों में चुनाये हाय ! हैं क्षत्री कई ।
उस काल भारतवर्ष की जैसी दशा थी होरही ।
वैसी यहां पर दुर्दशा हम से लिखी जाती नहीं ॥

८

कुछ पुण्य बढने से हमारा राज्य यवनों का गया।
नीती विचक्षण हिन्द में अंग्रेज का आना भया।
ये धर्म में निश्चय किसी के भी दखल करते नहीं।
कानून से निज के सदा हैं देश वश करते सही॥

९

हा! साधुओं में भी कहां है एकता सद्भाव वो?
था पूर्व ऋषियों में यहां पर एकता का चाव जो॥
हे एकते! अब सन्त पुरुषों में कदर तेरी नहीं।
है वास नीचों का जहां तू आज रहती है वहीं॥

१०

रहता सदा हम में यहां जो एकता सद्भाव था।
संपूर्ण जैन समाज में जो एक ही बरताव था॥
विपरीत उसके आज है अज्ञान बादल छा रहा।।
बस, क्या कहें? यह काल है विद्रोहजल बरसा रहा॥

११

जो संप रख करके परस्पर कार्य करते है सदा ।
हैं नाम उनके ही यहां विख्यात रहते सर्वदा ॥
जो है विरोधी कार्य की सिद्धी कभी पाते नही
निष्पुण्य प्राणी सौख्य संपत को यथा पाते नहीं ॥

१२

निज वीरता का गोप करना यह भयंकर पाप है ।
बिन एकता संसार में नहिं शान्ति किन्तूत्ताप है ।
हे भाइयो ! अब तो परस्पर संप रख कारज करो ।
निज वीर्य को गोपो नहीं आलस्य को तन से हरो ॥

पुरुषार्थ १३

उद्योग बिन संसार में कुछ काम हो सकता नहीं ।
पुरुषार्थ जो करते नहीं क्या वे विजय पाते कहीं ?
अतएव उद्योगी बनो निज वीर्य को फोरो अभी ।
अवसर मिले फोरो नहीं तो और फोरोगे कभी ?

१४

है *धूमशकटी मोटरें पुरुषार्थ से ही चल रहीं।
अरु ◊व्योमगामीयान भी तो आज हैं कुछ कम नहीं।
ये रेडियम सी वस्तु भी थे जन जिसे नहि जानते।
हैं देखकर सुनकर तथा आश्चर्य जिसको मानते॥

१५

दुस्साध्य ऐसी वस्तुओं को साध्य कर दिखला रहे।
ये शास्त्र ही देखो हमारे हैं उन्हें सिखला रहे॥
पुरुषार्थ का हीनत्व ही दुख दे रहा हमको बड़ा।
क्यों सो रहे ? अब तो उठो! है ज्ञान का भानूचढा॥

१६

तुम आज भी निज पूर्वजों का नाम रोशन कर सको।
थी धर्म की जैसी दशा वैसी उसे भी कर सको॥
आलस्य यदि तन से तुम्हारे नष्ट होवे आज भी।
कुछ है अधिक तुमको नहीं करना सुदुष्कर काज ही॥

* रेलगाडी ◊वायुयान

१७

आलस्य ही केवल तुम्हारे अंग से जब जायगा।
उत्तेज जैन समाज में इक वक्त फिर आजायगा ॥
उद्योग से आलस हरो ए वीर ! तब होगी कला।
हुशियार हो जिनवर भजो जिन धर्म को पालो भला॥

१८

इस विश्व में सम्पन्न हो पुरुषार्थ जो करते नहीं।
सोचो बिना पुरुषार्थ के हैं विजय पा सकते कहीं ॥
पुरुषार्थ से स्वामी बने देशी विदेशी भी यहां।
उद्योग से पाते सफलता लोग जाते है जहां ॥

१९

कुछ नाम करलो विश्व मे क्यों मौत कीडी की मरो।
नय को वरो पौरुष धरो निज धर्म युत कारज करो ॥
होकर सचेतन देह से जंजाल आलस को हरो।
उद्धार कर ससार का सानन्द भवसागर तरो ॥

२०

आराम से बैठे हुए यह काल जाता है चला।
पुरुषार्थ बिन जग में तुम्हारी नष्ट होती है कला ॥
दिल में विचारो बात यह निज धीरता त्यागो नहीं ।
धारण करो पुरुषार्थ को ऐश्वर्य तो पाओ यहीं ॥

परस्त्री त्याग २१

अभिसारिका के अंगसंगी हो रहे जो लोग हैं ।
उनके शरीरों में हजारों नित्य होते रोग हैं ॥
निज द्रव्य व्यय करके अहो ! वे मोल लेते पाप को ।
वे डालते है गर्त मे हा विज्ञ अपने आपको ॥

२२

वे भ्रूणहत्या पाप से भी तो कभी डरते नहीं ।
हैं निन्द्य कारज कौनसे हा! वे जिन्हें करते नहीं ॥
दुष्कर्म रूपी भार अब भू से सहा जाता नहीं ।
बस, क्या कहें? किसको कहें कुछ भी कहा जाता नहीं॥

२३

[illegible]
[illegible]
[illegible]
पर कामिनि मन को हरै तन को और धन को हरै ॥

२४

जिनकी हजारों सेव में थे देव नित रहते खड़े ।
परकामिनि के संग से बहु कष्ट हैं उनको पड़े ॥
कोटीश जो जाते गिने थे रंक हैं उनको करे ।
लंकेश रावण से बली भी संग से इसके मरे ॥

२५

अतएव इसका सुज्ञ जन को त्याग करना चाहिये ।
सज्जन जनों से विश्व में अनुराग करना चाहिये ॥
परनार को माता बहिन सी देखते वे धन्य हैं ।
उनके सिवा संसार में सुधरे हुवे क्या अन्य हैं ?

बाल वृद्ध विवाह २६

हा ! बाल वृद्ध विवाह भी संसार में फैला बड़ा।
था उच्च भारत जो इसी से आज वो नीचे पड़ा ॥
यद्यपि सदा सुख आश से जन कूट करते काम हैं।
तज्जन्य सुख तो बस उन्हें भगवान के ही नाम है ॥

२७

है वर्ष पैंसठ का तथा वर वर्ष कन्या सात की।
धनलोभ में आकर अहो यों व्याह करते पातकी ॥
जीवो मरो चाहे वधू वर चाहते वे दाम को।
धिक्कार है हा हन्त ! उनके नाम को औ काम को ॥

२८

हो बाल विधवा वे वधू कर याद पहली बात को।
दिन रात हैं हा! कोसती निज तात को अरु मात को॥
इस भांति पाकर दुख बहुत सी कूट करती कर्म हैं।
है जो सुशीला किन्तु वे कुछ राखती कुलशर्म है ॥

२९

कितना अनिष्ट किया हमारा हाय! बाल्य विवाह ने ।
अन्धा बनाया है हमें उस नातियों की चाह ने ॥
ग्रसित किया है वीर्य बल को मोह रूपी ग्राह ने ।
सारे गुणों को है बहाया इस कुरीति प्रवाह ने ॥

बाल्यविवाह ३०

अल्पायु में हैं हम सुतों का ब्याह करते किसलिये ।
गार्हस्थ्य का सुख शीघ्र ही पाने लगें वे इसलिये ॥
वात्सल्य है या वैर है यह हाय! कैसा कष्ट है ।
परिपुष्टता के पूर्व ही बल वीर्य होता नष्ट है ॥

अनमेल विवाह से हानि ३१

प्रतिवर्ष विधवा वृन्द की संख्या निरन्तर बढ रही ।
रोता कभी आकाश है फटती कभी हिल कर मही ॥
हा! देख सकता कौन ऐसे दग्धकारी दाह को ।
फिर भी नहीं हम छोडते है बाल्य वृद्ध विवाह को ॥

धनिकों की दशा ३२

है सेठ साहूकार लोगों की दशा जो हो रही ।
पाठक ! सुनो संक्षेप में हम निम्न लिखते है वही ॥
ये बोतलों के ही नशे मे मग्न रहते है सदा ।
देवेन्द्र जैसी मानते है किन्तु अपनी संपदा ॥

३३

पडती दशा निज बन्धुओं की देखते है वे यहां ।
जीवो मरो चाहे मगर वे ध्यान करते है कहां ॥
निज नारि को तो वे गुरू के तुल्य ही हैं मानते ।
हैं देव के सम विश्व मे निज द्रव्य को वे जानते ॥

३४

है लेखना पढना नहीं निज नाम तक भी जानते ।
तो भी कहो धनवान को हैं कौन जो न बखानते ॥
है आजतक उनकी प्रवृत्ति किन्तु कुत्सित पन्थ मे ।
पर ध्यान है उनको कहां जो फल मिलेगा अन्त मे॥

२५

ये रंडियों के नृत्य अथवा नाटकों में मग्न हैं।
धर्मोन्नति उत्साह तो उनके हृदय से भग्न है॥
बन्धु जन हैं कौन? अरु साधर्मिता कहते किसे?
क्या अर्थ जैनी शब्द का वे जानते हैं क्या इसे?

२६

धन, ऐश और विलास को वे मानते निज धर्म हैं।
पर धर्म का तो लेश भर भी जानते नहिं मर्म है॥
हा! धर्म बान्धव भाग्यवशं हो अन्न के वश मर रहे।
परवा नहीं उनको मगर वे पेट अपना भर रहे॥

२७

पर नाम रखते हैं बडों मे काम कुछ करते नहीं।
क्या हाल होगा अन्त मे इस बात से डरते नहीं॥
वे आप तो डूबे पडे संतान को भी खो रहे।
सुरवृक्ष के धोखे अहो! वे विप तरु है बो रहे॥

एक हिन्दु धर्म नेता ३८

हैं धर्म के नेता कहे जिनको यहां संसार मे ।
प्रत्यक्ष वे जाते बहे दुष्कर्म नद की धार मे ॥
वे खादि ही अक्षर त्रयी का धारते जो नाम है ।
मिस धर्म के दुष्कर्म करने मुख्य उनके काम है ॥

३९

जैसा कि पहिले काल मे भगवान केशव ने किया ।
है आज नाटक रंग वैसा ही उन्होंने कर दिया ॥
हा! धर्म नेता बन उन्होंने धर्म को दूषित किया ।
अवतार मानव का उन्होंने व्यर्थ ही जग में लिया ॥

४०

पर लॉय बल से केस भी इस के लिये हैं हो चुके ।
इस बात पर है बहुत्त जन निज प्राण तक भी खो चुके ॥
पर चाल यह उनकी जरा भी है न कम होती अहो ।
अंधेर ऐसा और भी है क्या कहीं जग मे कहो ॥

सप्त व्यसन ४१

इन मांस भक्षी प्राणियों को अन्त में होता बडा।
था शुद्ध सम्यक्त्ववान श्रेणिक को नरक जाना पडा॥
पर द्यूत को भी जैन ग्रन्थों में बड़ा खोटा कहा।
इस द्यूत से ही पाण्डवों का राज्य भी जाता रहा॥

४२

मद्य पीने से हरी के नाश है कुल का भया।
पापर्धि से राघव पिता का नाम दूषित हो गया॥
स्तैन्य से इसलोक में नहिं कौन पाता कष्ट है।
धन संग वेश्या से हुआ किसका न जग में नष्ट है॥

४३

लंकेश का मरना तथा अपयश हुआ पर नार से।
बचना सदा ही कष्टदायी सप्त व्यसनाचार से॥
रहना निरन्तर सत्यपथ में फर्ज अपना जान के।
सद्धर्म की सेवा करो गुरुदेव को पहिचान के॥

जैन समाज ४४

अति कष्ट में भी त्राण पर का जो सदा करते रहे ।
उपकार जल से दु:खियों के ताप को हरते रहे ॥
देशोन्नति के भी लिये संसार में मरते रहे ।
दुष्कर्म अत्याचार से जो आज तक डरते रहे ॥

४५

उन जैनियों की आज देखो है बडी संख्या घटी ।
बस क्या कहें सुन सुन हमारी जा रही छाती फटी ॥
पर गीत गाते हैं सदा वे आप कुछ करते नहीं ।
अपयश रहे हैं देख निज पुरुषार्थ वे धरते नहीं ॥

४६

जो पूर्व में इस जैन का झण्डा फरकता था यहां ।
हा! आज वैसा तेज भी अब दीखता हम में कहां ?
है धर्म वैसा ही मगर श्रद्धान में ही भेद है ।
वह पार हो सकती तरी क्या मध्य जिसके छेद है ॥

कर्म गति ४७

संसार के सब प्राणियों का कर्म पर आधार है।
इहलोक औ परलोक में जो फल सदा दातार है ॥
दो भेद हैं उसके शुभाशुभ जैन ग्रन्थों में कहे।
निज कर्म के अनुसार ही जग जीव दुख सुख पा रहे॥

४८

इस कर्म राजा के अहो जग जीव सब आधीन हैं।
सुर दैत्य क्या शक्रेन्द्र तक भी तो नहीं स्वाधीन हैं॥
हा! कर्म वश होकर हजारों मोक्ष पथ से हैं फिरे।
दुःशासनों से ही इसी के उच्च हो नीचे गिरे॥

४९

हे कर्म! ये तेरे नचाये नाचते सब लोग है।
तेरे किये ही सौख्य के संभोग होते रोग है॥
संसार के हम जीव तो आधीन है तेरे सभी।
हे कर्म! क्यों निष्ठुर बनो कुछ तो दया लाओ कभी॥

५०

संसार में अपने किये का भोगते फल है सभी ।
ह दुःख को जिसने सहा वह सौख्य भी पाता कभी ॥
प्रत्यक्ष है इस मे उदाहरण की जरूरत है नहीं ।
क्या हस्त कंकन देखने दरपण लिया जाता कहीं ॥

सद्धर्म सेवा ५१

संसार में वैभव कभी मिलते नहीं विन धर्म के ।
शिवशर्म है मिलता नहीं जैसे बिना सत्कर्म के ॥
जो जान यों सद्धर्म करते भाव से इहलोक में ।
मिलती उन्हे सुख संपदा इहलोक औ परलोक में ॥

५२

जो भावयुत सत्कर्म मे निज द्रव्य व्यय करते सदा।
है सार श्री उनकी यहां भव पार वे तरते सदा ॥
पर के लिये ही विश्व में निज प्राण है जो धारते ।
वे जीव ही जग में सदा परमार्थ कारज सारते ॥

५३

कोटी मनुष्यों के यहां जो आज स्वामी हो रहे।
कर्तव्य अपना त्याग कर सुख नींद में जो सो रहे॥
पूछो उन्हें क्या वे विभव को साथ ही ले जायंगे?
नहिं लेश भी आशा मगर वे अन्त में पछतायंगे॥

५४

बलदेव वासूदेव चक्री वृत्त जिनके हैं बडे।
जाते जहां जिनकी सदा सुर सेव करते थे खड़े॥
सिर छत्र होते थे जिन्होंके तेल मर्दित वाल थे।
चलते जिन्होंके साथ नौकर हाथ ले करवाल थे॥

५५

हरिचन्द्र से राजा जिन्होंने सत्यप्रण तोडा नहीं।
निज प्राण रहते तक जिन्होंने धर्म को छोडा नहीं॥
दु:सह्य जो विपदा उन्होंने सत्य के कारण सहीं।
वे आज भी संसार मे क्या हैं विदित किसको नहीं॥

५६

ऐसे हजारों ही हमारे हिन्दूवासी हो गये।
सद्धर्म के अंकूर वे संसार मे हैं बो गये॥
कर याद उनके वृत्त हमको धीर होना चाहिये।
उन पूर्वजो के तुल्य ही गंभीर होना चाहिये॥

५७

है क्या भरोसा जिन्दगी का आप क्यों भूले पड़े।
सद्धर्म की सेवा करो निज भाग्य जो समझो बडे॥
बिन पुण्य के संसार में सद्धर्म मिल सकता नहीं।
पापिष्ठ भी क्या विश्व में शुभ चीज पा सकता कहीं॥

५८

शुभ कार्य तो करते नहीं आशा करे शिवशर्म की।
इप्सित कहो कैसे मिले? श्रद्धा नहीं जब धर्म की॥
सद्धर्म का परित्याग कर जो उन्नति को इच्छते।
पाषाणनावा बैठ वे सागर उतरना इच्छते॥

५९

विन धर्म के ज्ञाता हुए सब सौख्य पाओगे नहीं।
धन मोहिनी सी वस्तुएं सब छोड जाओगे यहीं॥
चंपा चमेली पुष्प ज्यों पानी विना खिलता नहीं।
त्यों धर्म के बिन विश्व में यों सौख्य भी मिलता नहीं॥

वीडी ६०

सिगरेट का संसार में परचार घर घर हो गया।
सभ्यता सत्कार आदर पूर्वजों का सो गया॥
सब लालिमा इस देह की बल वीर्य सारा खो गया।
गंधा धुवा सब के कलेजे बीज विष का बो गया॥

६१

महेमान का सतकार वीडी मित्रता का मूल है।
इसके विना आनन्द भी मिल जाय तो सब धूल है॥
रात दिन हर हाल में वीडी बिना चलता नहीं।
वीड़ी अगर पीकर न जावें दस्त भी खुलता नहीं॥

६२

कर होठ काले दांत पड जाते मगर नहिं छूटती ॥
वख्त पर मिलती नहीं तो नाडियां सब टूटती ॥
जहर इसमें है भरा ये बात मैं कहता असल।
सभ्यजन करते नहीं जंगली मनुष्यों की नकल ॥

६३

तन को सुखावे खून खांसी रोग का भंडार है।
पर क्या कहूं यह बाल बुड्ढों की बनी सरदार है॥
हो कृष्ण मुनि के कथन पर जो आपका अनुराग जी।
तो शीघ्र अब होकर खडे बीडी करो सब त्याग जी ॥

भारतवर्ष की श्रेष्ठता ६४

श्री राम राजा विश्व मे नय मे विचक्षण हो गये।
हैं आज भारतवासियों के नीति से दिल धो गये ॥
नीती हमारे हिन्द से जो यों चली जाती नही।
तो आज भारतवर्ष की ऐसी दशा आती नहीं ॥

६५

था पूर्व विद्या केन्द्र जो वह आज भारत देख लो ।
बल हीन विद्या हीन पर आधीन उनको लेख लो ॥
हैं भृत्य के अब काम करते त्याग कर निज धर्म को।
करके कलंकित आज बैठे पूर्वजो के कर्म को ॥

६६

विज्ञानता वर सभ्यता का लेश भी तो है नहीं ।
निज धर्म से जो हैं पतित क्या वे विजय पाते कहीं ?
जैसे हमारे पूर्वजों ने कार्य दुनियां में किये ।
हम ढूंढते वैसे सदा है आज करने के लिये ॥

६७

हा! क्षुद्र जातिवंत भी निज धर्म उन्नति कर रहे ।
थे आर्य जो वे आज जाते द्वेष के नद मे बहे ॥
कूकरों की सी दशा है आज भारतवर्ष की ।
आशा पुनः किसको रही है हिन्द के उत्कर्ष की ॥

आर्य स्त्रियां ७४

हैं प्रीति और पवित्रता की मूर्ति सी वे नारियां।
है गेह मे वे शक्तिरूपा देह में सुकुमारियां ॥
गृहिणी तथा मन्त्री स्वपति की शिक्षिता है वे सती।
ऐसी नहीं हैं वे कि जैसी आज कल की श्रीमती ॥

७५

घर का हिसाब किताब सारा है उन्हीं के हाथ मे।
व्यवहार उन के है दयामय सब किसी के साथ मे ॥
है पाकशास्त्र विशारदा वे और वैद्यक जानतीं।
सब को सदा संतुष्ट रखना धर्म अपना मानतीं ॥

७६

आलस्य में अवकाश को वे व्यर्थ ही खोती नहीं।
दिन क्या निशा में भी कभी पति से प्रथम सोती नहीं॥
सीना पिरोना चिलकारी जानती है वे सभी।
संगीत भी पर गीतगन्दे वे नहीं गाती कभी ॥

७७

केवल पुरुष थे जो न वे जिनका जगत को गर्व था।
गृह देवियां भी थीं हमारी देवियां ही सर्वथा॥
था अत्रि अनसूया सरिस गार्हस्थ्य दुर्लभ स्वर्ग में।
दाम्पत्य में वह सौख्य था जो सौख्य था अपवर्ग में॥

७८

निज स्वामियों के कार्य में सम भाग जो लेतीं न वे।
अनुराग पूर्वक योग जो उसमें सदा देतीं न वे॥
तो फिर कहातीं किस तरह अर्द्धाङ्गिनी सुकुमारियां।
तात्पर्य यह अनुरूप ही थीं नर वरों के नारियां॥

७९

हारे मनोहत पुत्र को फिर बल जिन्होंने था दिया।
रहते जिन्होंने नव वधू के सुत विरह स्वीकृत किया॥
द्विज पुत्र रक्षा हित जिन्होंने सुत मरण सोचा नहीं।
विदुला सुमित्रा और कुन्ती तुल्य माताएं रहीं॥

८०

मूंदे रहीं दोनों नयन आमरण गान्धारी जहां।
पति संग दमयंती स्वयं वन वन फिरी मारी जहां॥
यों ही जहां की नारियों ने धर्म का पालन किया।
आश्चर्य क्या फिर ईश ने जो दिव्य बल उन को दिया॥

८१

बदली न जो अल्पायु वर भी वर लिया सो वर लिया।
मुनि को सता कर भूल से जिसके उचित प्रतिफल दिया॥
सेवार्थ जिसने रोगियों के था विराम लिया नहीं।
थी धन्य सावित्री सुकन्या और अंशुमती यहीं॥

८२

अबला जनों का आत्मबल संसार में वह था नया।
चाहा उन्होंने तो अधिक क्या रवि उदय भी रुक गया॥
जिस क्षुब्ध मुनि की दृष्टि से जल कर विहग भूपर गिरा।
वह भी सती के तेज सम्मुख रह गया निष्प्रभ निरा॥

वर्तमान स्त्रियां ८३

कौशल्य बहु सूचक कलाएं जानती थीं जो कभी ।
हैं अब कलह कुशला हमारी गृहिणियां प्रायः सभी ॥
हा! बन रहे हैं गृह हमारे आज विग्रह स्थल यहां ।
दो नारियां भी हैं जहां वाग्बाण बरसेंगे वहां ॥

८४

रखती नहीं गुण वे कि गन्दे गीत गाना जानती ।
कुछ शील लज्जा उस समय कुछ भी नहीं वे मानतीं॥
हर्षित हुए हम भी अहो! वे गीत सुनते सब कहीं ।
रोदन करो हे भाइयो! यह बात हंसने की नहीं ॥

८५

है ध्यान पति से भी अधिक आभूषणों का अब उन्हें।
तब तुष्ट होती हैं कि मढ़ दो मण्डनों से जब उन्हें ॥
है यह उचित ही क्योंकि जब अज्ञान से हैं दूषिता ।
क्या फिर भला आभूषणों से भी न हों वे भूषिता ॥

८६

क्या कर नहीं सकती भला यदि शिक्षिता हों नारियां?
रण रङ्ग राज्य सुधर्म्म रक्षा कर चुकीं सुकुमारियां ॥
लक्ष्मी अहल्या बाई जा बाई भवानी पद्मिनी ।
ऐसी अनेकों देवियां है आज जा सकती गिनी ॥

८७

सोचो नरों से नारियां किस बात में हैं कम हुईं ।
मध्यस्थ वे शास्त्रार्थ में हैं भारती के सम हुईं ॥
है धन्य थेरी तुल्य गाथा कत्रियां वे सर्वथा ।
कवि हो चुकी हैं विज्जका विजया मधुरवाणी यथा ॥

गरीब स्त्री की दशा ८८

नारी जनों की दुर्दशा हम से कही जाती नहीं ।
लज्जा बचाने को अहो जो वस्त्र भी पाती नहीं ॥
जननी पड़ी है और शिशु उस के हृदय पर मुख धरे।
देखे गये है किन्तु वे मा पुत्र दोनों ही मरे ॥

४९

जो कृष्णवर्णा हैं और भी वे आज रखतीं हैं यहीं।
सब जाति वाले किन्तु लोगों रंग रखतीं हैं नहीं॥
शैतान ने आकर कहा क्यों! बात जो होती कहीं।
भूले रहा जाता नहीं जनविधि सुन रोते कहीं॥

५०

है खोलती सरकार यद्यपि काम शीघ्र अकाल के।
होतीं सभाएं और खुलते फंड आदि हाल के॥
पूरा नहीं पड़ता तदपि वह त्राहि कम होती नहीं।
ऐसी विषमता है कि कुछ भी हाय सम होती नहीं॥

हमारी वीरता ५१

थे कर्म्म वीर कि मृत्यु का भी ध्यान कुछ धरते न थे।
थे युद्ध वीर कि काल से भी हम कभी डरते न थे॥
थे दान वीर कि देह का भी लोभ हम करते न थे।
थे धर्म्म वीर कि प्राण के भी मोह पर मरते न थे॥

९२

थे भीम तुल्य महाबली अर्जुन समान महारथी।
श्री कृष्ण लीलामय हुए थे आप जिनके सारथी॥
उपदेश गीता का हमारा युद्ध का ही गीत है।
जीवन समर में ही जनों को जो दिलाता जीत है॥

९३

जो एक सौ सौ से लडे ऐसे यहां पर वीर थे।
सम्मुख समर मे शैल सम रहते सदा हम धीर थे॥
शङ्का न थी जब जब समर का साज भारत ने सजा
जावा सुमात्रा चीन लङ्का सब कहीं डंका बजा॥

राजत्व और शासन ९४

देते प्रजा हित ही बढाकर प्राप्त कर वे सर्वथा।
ले भूमि से जल रवि उसे देता सहस्र गुना यथा॥
बन कर मृतस्थानीय भी हरते प्रजा का सोच थे।
करते तदर्थ न पुत्र के भी त्याग मे सङ्कोच थे॥

१५

हैं सघवी सायर न मेरे राज्य में तस्कर कहीं ।
व्यभिचारिणी तो कि कहां जब एक व्यभिचारी नहीं॥
जो सत्यवादी नृप बिना संकोच कहते थे यहां।
कोई बतादे विश्व में शासक हुए ऐसे कहां ?

राजा के लक्षण १६

राजा भला ए जाणवो हुःखो प्रजाना चूरता ।
अन्याय थी करता किये नीती प्रजा मां पूरता ॥
व्यभिचार आदिक दोष थी दूरे रहे सद्गुण वरे ।
राजा प्रजाना एवरे सहु भक्ति ने अंगे धरे ॥

१७

निज देश नी दाझे रहे अन्याय क्यारे ना करे ।
अभिमान ना मन में धरे सहु देखता नजरे फरे ॥
मदिरादि व्यसनों ने त्यजे प्रभु ने खरा मन थी भजे।
स्वात्मा समा सहु ने गणे देशोन्नति निशदिन सजे।

वर्तमान ना राजा ९८

राजा खरे ए बापला जे फातडा पेटे बन्या ।
व्यभिचारना कीडा बन्या उपकार कीधा सहु हण्या॥
संतापता निज राज्यना मानव गणों ने द्वेष थी ।
काचा सदा जे कानना जीवन वहे छे क्लेश थी ॥

९९

शीद ने ए अवतर्या निज राज्य नी पडती करे ।
न्यायी जनों ने पीडता साचूं न जे काने धरे ॥
घोरे अहो जे घेन मां निज राज ने नहि केळवे ।
जुल्माट अन्यायो करे लक्ष्मी प्रजानी मेळवे ॥

प्राचीन राजा १००

देखो महीपति उस समय के हैं प्रजा पालक सभी ।
रहते हुए उनके किसी को कष्ट हो सकता कभी ?
किस भांति पावे कर न यदि वे न्याय से शासन करें?
यदि वे अनीति करें कहीं तो वेन की गति से मरें ॥

१०१

सुस्नान के पीछे यथा क्रम दान की बारी हुई।
सर्वस्व तक के त्याग की सानन्द तैयारी हुई॥
दानी बहुत थे किन्तु याचक अल्प थे उस काल में।
ऐसा नहीं जैसे कि अब प्रतिकूलता है हाल में॥

कृषी और कृषक १०२

अब पूर्व की सी अन्न की होती नहीं उत्पत्ति है।
पर क्या इसी से अब हमारी घट रही सम्पत्ति है॥
यदि अन्य देशों को यहां से अन्न जाना बन्द हो।
तो देश फिर संपन्न हो क्रन्दन रुके आनन्द हो॥

१०३

जब अन्य देशों के कृषक सम्पत्ति से भर पूर हैं।
लाते कि जिन से आठ रुपया रोज के मजदूर हैं॥
तब चार पैसे रोज ही पाते कृषक यहां अहो।
कैसे चले संसार उनका किस तरह निर्वाह हो॥

१०४

बीता नहीं बहु काल उस औरंगजेबी को अभी।
करके स्मरण जिसका कि हिंदू कांप उठते हैं सभी ॥
उस दुस्समय के चांवलों का आठ मन का भाव है।
पर आठ सेर नहीं रहा अब क्या अपूर्व अभाव है?

१०५

बरसा रहा है रवि अनल भूतल तवा सा जल रहा।
है चल रहा सन सन पवन तन से पसीना ढल रहा॥
देखो कृषक शोणित सुखा कर हल तथापि चला रहे।
किस लोभ से इस आंच में वे निज शरीर जला रहे॥

१०६

मध्याह्न है उनकी स्त्रियां ले रोटियां पहुंचीं वहीं।
हैं रोटियां रूखी खबर है शाक की उनको नहीं॥
संतोष से खाकर उन्हें वे काम मे फिर लग गये।
भर पेट भोजन पा गये तो भाग्य मानों जग गये॥

१०७

उन कृषक बांधव की दशा पर नित्य रोती है दया।
हिम ताप वृष्टि सहिष्णु जिनका रंग काला हो गया॥
नारी सुलभ सुकुमारता उनमें नहीं है नाम को।
वे कर्कशांगी क्यों न हों देखो न उनके काम को?

१०८

गोबर उठाती थापती हैं भोगतीं आयास वे।
कृषि काटतीं लेतीं परोहे खोदती हैं घास वे॥
गृह कार्य जितने और हैं करती वहीं सम्पन्न हैं।
तो भी कदाचित् ही कभी भर पेट पाती अन्न हैं॥

१०९

कुछ रात रहते जाग कर चक्की चलाने बैठतीं।
हम सच कहेंगे उस समय वे गीत गाने बैठतीं॥
पर क्या कहें उस गीत से क्या लाभ पाने बैठतीं।
वे सुख बुलाने बैठतीं या दुख भुलाने बैठती॥

११०

घन घोर वर्षा हो रही है गगन गर्जन कर रहा।
घर से निकलने को कडक कर वज्र वर्जन कर रहा॥
तो भी कृषक मैदान मे करते निरन्तर काम है।
किस लोभ से वे आज भी लेते नहीं विश्राम हैं ?

१११

बाहर निकलना मौत है आधी अंधेरी रात है।
अह! शीत कैसा पड रहा है थर थराता गात है॥
तो भी कृषक इंधन जला कर खेत पर है जागते।
वह लाभ कैसा है न जिसका लोभ अब भी त्यागते॥

११२

ग्रामीण गीत यदा कदा वे गान करते है सही।
है फाग उनका राग बहुधा और उत्सव भी वही॥
पर चित्त को वे दीन जन किस भांति बहलाया करें।
क्या आंसुओं से ही उसे वे नित्य नहलाया करें॥

११३

तुम सभ्य हो मार्केट जिनका सात सागर पार है।
पर ग्राम का यह हाट ही उनका बडा बाजार है॥
तुम हो विदेशों से मंगाते माल लाखों का यहां।
पर वे अकिंचन नमक गुड ही मोल लेते है वहां॥

गो वध ११४

यूरोप में कल के हलों से काम होता है सही
जुत क्यों न जाती है अरब में ऊंट के हल से मही॥
गो वंश पर ही किंतु है यह देश अवलम्बित सदा।
पर दीन भारत! हाय! तेरे भाग्य में है क्या बदा?

११५

था समय वह भी एक जो अब स्वप्न जा सकता कहा?
घी तीस सेर विशुद्ध रुपये में हमें मिलता रहा॥
देहात में भी सेर भर से अब अधिक मिलता नहीं।
दुर्बल हुए हम आज यों तनु भार भी झिलता नहीं॥

११६

दांतों तले तृण दाब कर है दीन गायें कह रहीं ।
हम है चतुष्पद मनुज तुम हो योग्य क्या तुमको यही॥
हमने तुम्हें मां की तरह है दूध पीने को दिया ।
देकर कसाई को हमें तुमने हमारा वध किया ॥

११७

जो जन हमारे मांस से निज देह पुष्टि विचार के ।
है कर रहे उदरस्थ हमको क्रूरता से मार के ॥
मालूम होता है सदा धारे रहेंगे देह वे ?
या साथ ही ले जायंगे उसको बिना संदेह वे'

११८

हा! दूध पीकर भी हमारा तुष्ट होते हो नहीं ।
दधि घृत तथा तक्रादि से भी पुष्ट होते हो नहीं ॥
तुम खून पीना चाहते हो तो यथेष्ट वही सही ॥
नर योनि हो तुम धन्य हो तुम जो करो थोडा वही॥

११९

क्या धन हमारा है भला हम दीन है बलहीन है।
मारो कि पालो कुछ करो तुम हम सदैव अधीन है॥
प्रभु के यहां में भी कदाचित् आज हम असहाय है।
इससे अधिक अब क्या कहें हा! हम तुम्हारी गाय है॥

१२०

बच्चे हमारे भूख से रहते समक्ष अधीर है।
करके न इनका सोच कुछ देती तुम्हें हम क्षीर है॥
चर कर विपिन में घास फिर आती तुम्हारे पास है।
होकर बड़े वे वत्स भी बनते तुम्हारे दास है॥

१२१

जारी रहा क्रम यदि यहां यों ही हमारे नाश का।
तो अस्त समझो सूर्य भारत भाग्य के आकाश का॥
जो तनिक हरियाली रही वह भी न रहने पायगी।
यह स्वर्ण भारत भूमि बस मरघट मही बन जायगी॥

व्यापार १२२

अब रख नहीं सकते स्वयं हम लाज भी अपनी अहो।
रखते विदेशी वस्त्र उनसे सभ्य हैं हम क्यों न हो?
करती अपेक्षा आप अपनी पूर्ण जो जितनी जहां।
वह जाति उतनी ही समुन्नति प्राप्त करती है वहां॥

१२३

हम दूसरों को पांच सौ की बेचते हैं जब रुई।
सानन्द कहते है कि हमको आय क्या अच्छी हुई?
पर दूसरे कहते कि ठहरो वस्त्र जब हम लायगे।
तब और पैतालीस सौ लेकर तुम्हीं से जायगे॥

१२४

हा! आप आगे दौड कर हम दीनता को ले रहे।
लेकर खिलौने काच आदिक अन्न धन हैं दे रहे॥
आवश्यकीय पदार्थ अपने यदि बनाते हम यहीं।
तोहानि होकर यों हमारी दुर्दशा होती नहीं॥

१२५

लेकर विदेशी टीन हम सानन्द चांदी दे रहे।
देकर तथा सोना निरन्तर हैं गिल्ट हम ले रहे॥
हम काच लेकर दूसरों को दे रहे हीरे खरे।
निज रक्त के बदले महोदक ले रहे हैं हा! हरे॥

१२६

इतिहास में इस देश की वाणिज्य वृद्धि प्रसिद्ध है।
अन्यान्य देशों से यहां सम्बन्ध इसका सिद्ध है॥
बन कर यहां वर वस्तुएं सर्वत्र ही जाती रहीं।
नर रचित कहते न थे सुर रचित दिखती सही॥

रईस १२७

राजा रईसों की यहां है आज ऐसी ही दशा।
अन्धा बना देता अहो करके बधिर मद का नशा॥
बस भोग और विलास ही उनके निकट सब सार है।
संसार में है और जो कुछ वह भयङ्कर भार है॥

१२८

दो पैर जो पैदल चले जाता अमीर नहीं गिना।
होती न सैर प्रदर्शनी की भी यहां वाहन बिना॥
इगलैंड का युवराज तो सीखे कुली का काम भी।
पर काम क्या? आता नहीं लिखना यहां निज नाम भी॥

१२९

हो आध सेर कबाब मुझको एक सेर शराब हो।
है सनत नूरे ही जहां की खूब हो कि खराब हो॥
कहना मुगल सम्राट का यह ठीक है अब भी यहां।
राजा रईसों को प्रजा की है भला परवा कहां?

१३०

जातीयता क्या वस्तु है? निज देश कहते हैं किसे?
क्या अर्थ आत्म त्याग का वे जानते हैं क्या इसे?
सुख दुःख जो कुछ है यहीं है धर्म कर्म अलीक है।
खाओ पियो मौजें करो खेलो हंसो सो ठीक है॥

१३१

[illegible]

१३२

ऐसा नहीं कि स्वत्व अपने वे नहीं पहचानते ;
वे क्या न जाने किन्तु वे हो गए हैं [illegible] ;
यदि कोई उनकी सभा में है [illegible]
हैं जानते हैं कि [illegible] ।

१३३

दुर्विध प्रजा का द्रव्य हर कर फूंकते हैं व्यर्थ वे ।
सत्कार्य करने के लिये हैं सर्वथा असमर्थ वे ॥
चाहे अपव्यय में उड़ा लावें करोड़ों भी अभी ।
पर देश हित में वे न देंगे एक कौड़ी भी कभी ॥

१३४

मन हाथ में उनके नहीं वे इन्द्रियों के दास हैं ।
कल कण्ठियां गुंजारतीं उनके अतुल आवास हैं ॥
वे नेत्र बाणों से विंधे है बाल व्यालों से डसे ।
कैसे बचेंगे वे विषय के बन्धनों से हैं कसे ?

१३५

हां, नाच भोग विलास हित उनका भरा भंडार है ।
धिक् धिक् पुकार मृदंग भी देता उन्हें धिक्कार है ॥
वे जागते है रात भर दिन भर पडे सोवे न क्यों ।
है काम से ही काम उनको दूसरे रोवे न क्यों ?

१३६

बस भांड भडुवे मसखरे उनकी सभा के रत्न हैं ।
करते रिझाने को उन्हें अच्छे बुरे सब यत्न हैं ॥
धारा बचन की कौन जो उनके सुखार्थ न बह उठे ?
है कौन उनकी बात पर जो हां हुजूर न कह उठे ?

१३७

देशी नरेशों को जरा भी ध्यान होता देश का।
होते न विषयाधीन यदि वे त्याग कर उद्देश का॥
तो दूसरा ही दृश्य होता आज भारतवर्ष का।
दिन देखना पड़ता हमें क्यों आज यह अपकर्ष का॥

रईसों के सपूत १३८

श्रीमान शिक्षा दें उन्हें तो श्रीमती कहतीं यहीं।
घेरो न लल्ला को हमारे नौकरी करनी नहीं॥
शिक्षे! तुम्हारा नाश हो तुम नौकरी के हित बनी।
लो मूर्खते! जीती रहो रक्षक तुम्हारे हैं धनी॥

१३९

तीतर लवे मेंढ पतंगे वे लड़ाते हैं कभी।
वे दूसरों के व्यर्थ झगडे मोल लेते है कभी॥
दस बीस उनके दुर्व्यसन हों तो गिने भी जा सकें।
पथ या विपथ है कौन ऐसा वे न जिस पर आ सकें॥

१४०

निकले कि फिर दस पांच चिडियां मार.लाना है उन्हे
बन्दूक ले वन जन्तुओं पर बल दिखाना है उन्हे ॥
घातक तुम्हारी जो सहज ही शाम की यह सैर है।
पर उन अभागों से कहो किस जन्म का क्या वैर है?

१४१

आया जहां यौवन उन्हे बस भूत मानों चढ गया।
जीवन सफल करणार्थ अब उनमे अपव्यय बढ गया॥
सौंदर्य के शशि लोक मे सब और उनके चर उडे।
गुंडे पसीने की जगह लोहू बहाने को जुडे॥

१४२

सगीत के मर्मज्ञ उनसे आज वे ही दीखते।
है आप भी उनसें बहुत गाना बजाना सीखते॥
यदि रंडियो के साथ वे ठेका लगाते है कभी।
तो क्या हुआ? अपनी प्रिया पर प्रेम रखते है सभी॥

१४३

रहती उन्हीं के ठाठ की है धूम मेलों में सदा।
आगे मिलेंगे ये थियेटर और खेलों में सदा॥
ये नाच मुजरे और जलसे हैं उन्हीं से लग रहे।
हैं यार लोगों के उन्हीं से भाग्य जग में जग रहे॥

१४४

यों कुछ दिनों घर फूंक कौतुक देख कर नंगे हुए।
फिर क्या हुआ? सरकार थे जो दीन भिखमंगे हुए॥
हंसने लगा संसार उनको यार छोड़ गये सभी।
लुच्चे लफंगे भी किसी के मीत होते हैं कभी?

१४५

आशा अनागत की हमारी क्या इन्हीं पर लग रही?
क्या पुन्नरक से अन्त मे हमको उबारेंगे यही?
बेडा इन्हीं से पार होगा क्या स्वदेश समाज का?
होगा सुदृढ फिर राज्य किसके हाथ से कलिराज का?

शिक्षा की-अवस्था १४६

हा! आज शिक्षा मार्ग भी संकीर्ण होकर क्लिष्ट है।
कुलपति सहित उन गुरुकुलों का ध्यान ही अवशिष्ट है॥
बिकने लगी विद्या यहां अब शक्ति हो तो क्रय करो।
यदि शुल्क आदि न दे सको तो मूर्ख रहकर ही मरो॥

१४७

ऐसी असुविधा में कहो वे दीन कैसे पढ सकें?
इस और वे लाखों अकिंचित किस तरह से बढ सकें?
अध पेट रहकर काटते है मास के दिन तीस वे।
पावें कहां से पुस्तकें लावे कहां से फीस वे?

१४८

वह आधुनिक शिक्षा किसी विध प्राप्त भी कुछ कर सको।
तो लाभ क्या? बस क्लर्क बनकर पेट अपना भर सको॥
लिखते रहो जो सिर झुका सुन अफसरों की गालियां।
तो दे सकेंगी रात को दो रोटियां घरवालियां॥

१४९

अब नौकरी ही के लिये विद्या पढी जाती यहां।
बी. ए. न हों हम तो भला डिप्टीगरी रक्खी कहां?
किस स्वर्ग का सोपान है तू हाय री डिप्टीगरी।
सीमा समुन्नति की हमारी चित्त में तूही भरी॥

१५०

शिक्षार्थ छात्र विदेश भी जाते अवश्य कभी कभी।
पर वक्तृता ही झाडते हैं लौटकर प्राय: सभी॥
है काम कितनों का यही पहले यहां मिस्टर बने।
इंगलैण्ड जाकर फिर वहां वाग्वीर बैरिस्टर बने॥

१५१

जाकर विदेश अनेक अब तक युवक अपने आ चुके।
पर देश के वाणिज्य हित की ओर कितने हैं झुके॥
हैं कारखाने कौनसे उनके प्रयत्नों से चले?
क्या क्या सुफल निज देश में उनसे अभी तक हैं फले?

१५२

अमरीकनों के पात्र जूठें साफ कर पंडित हुए।
सच्चे स्वदेशी मान से फिर भी नहीं मडित हुए।
दृष्टांत बनते हैं अधिक वे इस कहावत के लिये।
बारह बरस दिल्ली रहे पर भाड ही झोंका किये॥

१५३

दासत्व के परिणाम वाली आज है शिक्षा यहां।
हैं मुख्य दो ही जीविकाएं भृत्यता भिक्षा यहां॥
या तो कहीं घन कर मुहर्रिर पेट का पालन करो।
या मिल सके तो भीख मांगो अन्यथा भूखे मरो॥

१५४

सब से प्रथम कर्तव्य है शिक्षा बढाना देश में।
शिक्षा विना ही पड रहे है आज हम सब क्लेश में॥
शिक्षा विना कोई कभी बनता नहीं सत्पात्र है।
शिक्षा विना कल्याण की आशा दुराशा मात्र है॥

१५५

जब तक अविद्या का अंधेरा हम मिटावेंगे नहीं।
जब तक समुज्ज्वल ज्ञान का आलोक पावेंगे नहीं॥
तब तक भटकना व्यर्थ है सुख सिद्धि के सन्धान में।
पाये बिना पथ पहुंच सकता कौन इष्ट-स्थान मे?

१५६

वे देश जो हैं आज उन्नत और सब संसार से।
चौंका रहे हैं नित्य सब को नव नवाविष्कार से॥
सब ज्ञान के संचार से ही बढ सके हैं वे वहां।
विज्ञान बल से ही गगन में चढ सके हैं वे वहां॥

१५७

विद्या मधुर सहकार करती सर्वथा कटु निम्ब को।
विद्या ग्रहण करती कलों से शब्द को प्रतिबिम्ब को॥
विद्या जडों में भी सहज ही डालती चैतन्य है।
हीरा बनाती कोयले को धन्य विद्या धन्य है॥

धर्म की दशा १५८

था धर्म प्राण प्रसिद्ध भारत बन रहा अब भी वही।
पर प्राण के बदले गले में आज धार्मिकता रही॥
धर्मोपदेश सभा भवन की भित्ति में टकरा रहा।
आडम्बरो को देख कर आकाश भी चकरा रहा॥

१५९

बस कागजी घुडदौड में है आज इति कर्तव्यता।
भीतर मलिनता हो भले ही किंतु बाहर भव्यता॥
धनवान ही धार्मिक बने यद्यपि अधर्मासक्त हैं।
है लाख में दो चार सुहृदय शेष बगुला भक्त है॥

१६०

अनुकूल जो अपने हुए वे ही यहां सद्ग्रन्थ हैं।
जितने पुरुष अब है यहां उतने समझलो पन्थ हैं॥
यों फूट की जड जम गई अज्ञान आकर अड गया।
हो छिन्न भिन्न समाज सारा दीन दुर्बल पड गया॥

१६१

प्रभु एक किंतु असंख्य उनके नाम और चरित्र हैं।
तुम शैव हम वैष्णव इसीसे हा! अभाग्य अमित्र है।
तुम ईश को निर्गुण समझते हम सगुण भी जानते।
हा! अब इसी से हम परस्पर शत्रुता हैं मानते॥

तीर्थ और तीर्थपण्डे १६२

आरम्भ से ही जो हमारे मुख्य धर्मक्षेत्र है।
अब देख कर उनकी दशा आंसू बहाते नेत्र हैं॥
हा! गूढ़ तत्वों का पता ऋषि मुनि लगाते थे जहां॥
सब से अधिक अविचार का विस्तार है सम्प्रति वहां॥

१६३

वे तीर्थ जो प्रभु की प्रभा से पूर्ण हो पूजित हुए।
राजर्षि युत ब्रह्मर्षियों के कण्ठ से कूजित हुए॥
अब तीर्थ गुरु ही हैं अधिक उनको कलंकित कर रहे।
हा! स्वर्ग के सुस्थान में हम नरक अंकित कर रहे॥

१६४

वे तीर्थपण्डे है जिन्होंने स्वर्ग का ठेका लिया।
है निन्द्य कर्म न एक ऐसा हो न जो उनका किया ||
वे है अविद्या के पुरोहित अविधि के आचार्य है |
लड़ना झगड़ना और अडना मुख्य उनके कार्य हैं ||

१६५

वे आप तो हैं ही पतित कामी कुपथगामी बड़े |
पर पाप के भागी हमें भी हैं बनाने को खड़े ||
हम भस्म मे घृत के सदृश देते उन्हें जो दान हैं |
बस वे उसी से दुर्व्यसन के जोड़ते सामान हैं ||

आधुनिक साधु सन्त १६६

वे भूरि संख्यक साधु जिनके पन्थ भेद अनन्त हैं |
अवधूत यति नागा उदासी सन्त और महन्त हैं ||
हा! वे गृहस्थों से अधिक हैं आज रागी दीखते |
अत्यल्प ही सच्चे विरागी और त्यागी दीखते ||

१६७

जो कामिनी कांचन न छूटा फिर विराग रहा कहां।
पर चिह्न तो वैराग्य का अब है जटाओं में यहां॥
मूर्खों ने रख कर जटा वे साधु कहलाने लगे।
चिमटा लिया भस्मी रमाई मांग कर खाने लगे॥

१६८

यदि ये हमारे साधु ही कर्त्तव्य अपना पालते।
तो देश का बेड़ा कभी का पार ये कर डालते॥
पर हाय इनमें ज्ञान तो बस राम ही का नाम है।
दम की चिलम में लौ लगाना मुख्य इनका काम है॥

१६९

संख्या अनुद्योगी जनों की हीन उनसे बढ रही।
शुचि साधुता पर भी कुयश की कालिमा है चढ रही॥
है भस्म लेपन से कहीं मन की मलिनता छूटती।
हा! साधु मर्यादा हमारी अब दिनोंदिन टूटती॥

१७०

सन्तो! महन्तो! स्वामियो! गौरव तुम्हारा ज्ञान है।
पर क्या कभी इस बात पर जाता तुम्हारा ध्यान है?
यह वेष चाहे सुगम हो आवेश अति दुर्गम्य है।
सौरभ रहित है जो सुमन वह रूप में क्या रम्य है?

१७१

हे साधुओ! सोये बहुत अब ईश्वराराधन करो।
उपदेश द्वारा देश का कल्याण कुछ साधन करो॥
डूबे रहोगे और कब तक हाय तुम अज्ञान में?
चाहो तुम्हीं तो देश की काया पलट दो आन में॥

१७२

ये साधु तुलसीदास नानक रामदास समर्थ भी।
व्यवहृत यही पद हो रहा है आज उनके अर्थ भी॥
पर वे न होकर भी यहां उपकार सब का कर रहे।
सद्भाव उनके ग्रन्थ सब के मानसों में भर रहे॥

१७३

कुछ वेष की भी लाज रक्खो अज्ञता का अन्त हो।
भर कर न केवल उदर ही तुम लोग सच्चे सन्त हो॥
बाधा मिटा दो शीघ्र मन से इन्द्रियों के रोग की।
फले चमत्कृति फिर यहां पर सिद्धि मूलक योग की॥

ब्राह्मण १७४

उन अग्रजन्मा ब्राह्मणों की हीनता तो देखलो।
भू देव थे जो आज उनकी दीनता को देखलो॥
वे ब्रह्म-मूर्ति यथार्थ जो अब मुग्ध जड़ता पर हुए।
जो पीर थे देखो वही भिश्ती बवर्ची खर हुए॥

१७५

कुछ शीघ्रबोध रटा कि फिर वे गणक पुंगव बन गये।
पञ्चांग पकड़ा और बस सर्वज्ञता में सन गये॥
सङ्कल्प तक भी शुद्ध वे साद्यन्त कह सकते नहीं।
पर पाद पङ्कज के पखाये बिन रह सकते नहीं॥

१७६

जिन ब्राह्मणों ने लोभ को सन्तत तिरस्कृत था किया।
देखो उन्ही के वंशजों को आज उसने ग्रस लिया ॥
अब आप उनकी दक्षिणा पहिले नियत कर दीजिये ।
फिर निन्द्य से भी निन्द्य उनसे काम करवा लीजिये॥

१७७

आचार उनका आज केवल रह गया है स्नान में ।
जप तप तथा वह तेज अब है शेष बाह्य विधान में॥
वे भ्रष्ट यद्यपि हो रहे है डूब कर अज्ञान मे ।
जाते मरे है किन्तु फिर भी वंश के अभिमान मे ॥

सच्चा ब्राह्मण १७८

भाषा सकल जाणे अने भाषा सिखवता सर्व ने ।
मोहाय ना द्रव्यादि मां झूठो धरे ना गर्व ने ॥
गुण कर्म थी ब्राह्मण बनी परमार्थ मां राची रहे ।
जे ब्रह्म जाणे ते खरा वदतांज ब्राह्मण पद लहे ॥

१७९

हे ब्राह्मणो! फिर पूर्वजों के तुल्य तुम ज्ञानी बनो।
भूलो न अनुपम आत्मगौरव धर्म के ध्यानी बनो॥
कर दो चकित फिर विश्व को अपने पवित्र प्रकाश से।
मिट जाय फिर सब तम तुम्हारे देश के आकाश से॥

१८०

प्रत्यक्ष था ब्रह्मत्व तुममें यदि उसे खोते नहीं।
तो आज यों सर्वत्र तुम लांछित कभी होते नहीं।
यह द्वार द्वार न भीख तुम को मांगनी पड़ती कभी।
भू पर तुम्हें सुर जान कर थे मानते मानव सभी॥

क्षत्रिय १८१

है ब्राह्मणों की यह दशा अब क्षत्रियों को लीजिये।
उनके पतन काभी भयङ्कर चित्र दर्शन कीजिये॥
अविवेक तिमिराच्छन्न अब वे अन्ध जैसे हो रहे।
हा! सूर्यवंशी चन्द्रवंशी वीर कैसे हो रहे?

१८२

वीरत्व हिंसा में रहा जो मूल उनके लक्ष्य का।
कुछ भी विचार उन्हें नहीं है आज भक्ष्याभक्ष्य का॥
केवल पतङ्ग विहङ्गमों मे जलचरों में नाव ही।
बस भोजनार्थ चतुष्पदों में चारपाई बच रही॥

१८३

जो हैं अधीश्वर बस प्रजा पर कर लगाना जानते।
निर्द्रव्य डाका डालना भी धर्म अपना मानते॥
जो स्वामि सम रक्षक रहे वे आज भक्षक बन रहे।
जो हार थे मन्दार के वे आज तक्षक बन रहे॥

१८४

विश्वेश के बाहुज अतः कर्तृत्व के जो केन्द्र थे।
थे छत्र जो निज देश के मूर्द्धाऽभिषिक्त नरेंद्र थे॥
आलस्य में पड़ कर वही अब शव-सदृश हैं सो रहे।
कुल मान मर्यादा-सहित सर्वस्व अपना खो रहे॥

१८५

जिनसे कभी उपदेश लेने विप्र भी आते रहे।
विख्यात ब्रह्मज्ञान का जो मार्ग दिखलाते रहे॥
देखो इन्हीं में पड गई है अब अविद्या की प्रथा।
है स्वप्न आज विदेह कौशल और काशी की कथा॥

१८६

जो देश के प्रहरी रहे घर फूंकने वाले बने।
जो वीर वर विख्यात थे वे क्लीबता मे हैं सने॥
सुर-कार्य साधक जो रहे अब दुर्व्यसन में लीन है।
जो थे सहज स्वाधीन वे ही आज विषयाधीन हैं॥

१८७

छाया बनी थी वीरता सर्वत्र जिनके साथ की।
वे आज कठपुतली बने है मत्तमन के हाथ की॥
मार्तण्ड थे जो अब वही हिम खण्ड होकर बह रहे।
वे आप कुछ न कहें भले ही कर्म उनके कह रहे॥

१८८

जो शत्रु के हृत्पट्ट पर लिखते रहे जय शैल से ।
वर वीरता के कार्य जिनके पक्ष में थे खेल से ॥
रहने लगी देखो उन्हीं पर अब चढाई काम की ।
नैया डुबोई है उन्होंने पूर्वजों के नाम की ॥

१८९

हे क्षत्रियो! सोचो तनिक तुम आज कैसे हो रहे?
हम क्या कहें? कह दो तुम्हीं तुम आज जैसे हो रहे॥
स्वाधीनता सारी तुम्ही ने है न खोई देश की?
बनकर विलासी विग्रही नैया डुबोई देश की ॥

१९०

निज दुर्दशा पर आज भी क्यों ध्यान तुम देते नहीं?
अत्यन्त ऊंचे से गिरे हा! किन्तु तुम चेते नहीं ॥
अब भी न आंखे खोल कर क्या तुम विलोकोगे कहो?
अब भी कुपथ की ओर से मनको न रोकोगे कहो ?

१९१

वीरो' उठो अब तो कुयश की कालिमा को मेट दो।
निज देश को जीवन सहित तन मन तथा धन भेंट दो॥
रघु-राम भीष्म तथा युधिष्ठिर सम न हो जो आज से।
तो वीर विक्रम से बनो विद्यानुरागी भोज से॥

वैश्य १९२

जो ईश के जानुज अतः निज पर स्वदेश स्थिती रही।
व्यापार कृषि गो रूप में दुहते रहे जो सब मही॥
वैश्य भी अब पतित होकर नीच पद पाने लगे।
बनिये कहा कर वैश्य से बक्काल कहलाने लगे॥

१९३

वह लीपि जिसमें सेठ को सठ ही लिखेंगे सब कहीं।
सीखी उन्होंने और उनकी हो चुकी शिक्षा वहीं॥
हा! वेद के अधिकारियों में आज ऐसी मूढता।
है शेप उनके गुप्त पद मे किन गुणों की गूढता॥

१९४

कौशल्य उनका अब यहां बस तोलने में रह गया ।
उद्यम तथा साहस दिवाला खोलने में रह गया॥
करने लगे हैं होड़ उनके वचन कच्चे सूत से ।
करते दिवाली पर परीक्षा भाग्य की वे द्यूत से ॥

१९५

बस, हाय पैसा! हाय पैसा! कर रहे है वे सभी ।
पर गुण बिना पैसा भला क्या प्राप्त होता है कभी ?
सबसे गये बीते नहीं क्या आज वे हैं दीखते ?
वे देख सुन कर भी सभी कुछ क्या कभी कुछ सीखते?

१९६

बस अब विदेशों से मंगा कर बेचते हैं माल वे ।
मानों विदेशी वाणिजों के हैं यहां दल्लाल वे ॥
वेतन सदृश कुछ लाभ पर वे देश का धन खो रहे।
निर्द्रव्य कारीगर यहां के हैं उन्हीं को रो रहे ॥

१९७

चन्दा किसी शुभ कार्य में दो चार सौ जो है दिया।
तो यज्ञ मानो विश्वजित ही है उन्होंने कर लिया॥
बनवा चुके मन्दिर कुआ या धर्मसाला जो कहीं।
हा स्वार्थ! तो उनके सदृश सुर भी सुयश भागी नहीं॥

१९८

औदार्य उनका दीखता है एक मात्र विवाह से।
बह जाय चाहे वित्त सारा नाच रङ्ग प्रवाह में॥
वे वृद्ध होकर भी पता रखते विषय की थाह का।
शायद मरे भी जी उठे वे नाम सुन कर ब्याह का॥

१९९

वाणिज्य या व्यवसाय का होता शऊर उन्हें कहीं।
तो देश का धन यों कभी जाता विदेशों को नहीं॥
है अर्थ सट्टा फाट का उनके निकट व्यापार का।
कुछ पार है देखो भला उनके महा अविचार का?

२००

उनका द्विजत्व विनष्ट है है किंतु उनको खेद क्या ?
संस्कारहीन जघन्यजों में और उनमे भेद क्या ?
उपवीत पहने देख उनको धर्म भाग्य सराहिए ।
पर तालियों के बांधने को रज्जु भी तो चाहिये ।

सच्चा वैश्य २०१

हुन्नर कला व्यापार थी आजीविका करता रहे ।
कृषि कर्म खेडुत जिंदगी विश्वोपयोगज जे वहे ॥
पशुओ तणुं पालन करे परमार्थ जीवन आचरे ।
वैश्यो भला ते अवतर्या सहकार सद्गुण ने धरे ॥

२०२

आचार मां उत्तम घणा सारा विचारो जे करे ।
व्यसनोज सर्वे परिहर सहु धर्म नी सेवा धरे ॥
करुणा करे सहु प्राणि नी ने साधु सेवा आदरे ।
वैश्यो भला ते अवतर्या जे धर्म कर्म समाचरे ॥

२०३

वैश्यो! सुनो व्यापार सारा मिट चुका है देश का।
सब धन विदेशी हर रहे हैं पार है क्या क्लेश का?
अब भी न यदि कर्त्तव्य का पालन करोगे तुम यहां।
तो पास हैं वे दिन कि जब भूखे मरोगे तुम यहां॥

२०४

है आज भी यह रत्न प्रसु वसुधा यहां की सी कहां?
पर लाभ इससे अब उठाते हैं विदेशी ही यहां॥
उद्योग घर में भी अहो! हमसे किया जाता नहीं।
हम छाल छिलके चूंसते हैं रस पिया जाता नहीं॥

गृह कलह २०५

अब गृह कलह के अर्थ भारत भूमि रणचण्डी बनी।
जीवन अशान्ति प्रपूर्ण सब के दीन हों अथवा धनी॥
है गेह की जब यह दशा क्या बात बाहर की कहें?
है कौन सहृदय जन न जिसके अब यहां आंसू बहे?

२०६

उद्दण्ड उग्र अनैक्य ने क्षय कर दिया है क्षेम का।
विद्वेष ने पद हर लिया है आज पावन प्रेम का॥
ईर्षा हमारे चित्त से, क्षण मात्र भी हटती नहीं।
दो भाईयों मे भी परस्पर, अब यहां पटती नहीं॥

२०७

इस गृह कलह से ही कि, जिसकी नींव है अविचार की।
निन्दित कदाचित है प्रथा, अब सम्मिलित परिवार की॥
पारस्परिक सौहार्द अपना, अन्यथा अश्रान्त था।
जहं कुटुम्ब वसुधैव का, सिद्धान्त यह एकान्त था॥

२०८

हम मत्त हैं हम पर चढा कितने नशों का रङ्ग है।
चंडू करस गांजा मदक अहिफेन मदिरा भङ्ग है॥
सुनलो जरा हम में यहां कैसी कहावत है चली।
पीता न गांजे की कली उस मर्द से औरत भली॥

२०९

क्या मर्द हैं हम? वाह! वा! मुख नेत्र पीले पड़ गये।
तन सूख कर कांटा हुआ सब अङ्ग ढीले पड़ गये॥
मर्दानगी फिर भी हमारी देख लीजे कम नहीं।
ये भिनभिनाती मक्खियां क्या मारते हैं हम नहीं?

२१०

अंगरेज वणिकों ने नशे की लौ लगाई है हमें।
हम दोष देते हैं कि जब यह मौत आई है हमें॥
पर व्यर्थ है यह दोष देना हैं हमीं दोषी बड़े।
हम लोग कहने से किसी के क्यों कुए में गिर पड़े?

२११

दो चार आने रोज के भी जो कुली मजदूर हैं।
सन्ध्या समय वे भी नशे में दीख पड़ते चूर हैं॥
मर जांय चाहे बाल बच्चे भूख के मारे सभी।
पर छोड़ सकते हैं नहीं इन दुर्व्यसन को वे कभी॥

विदेशी २१२

परदेश की वस्तु सभी आती नजर घर में यहां।
निज देश की तो चीज का अब नाम तक भी है कहां?
खाना तथा पीना पहरना है सभी परदेश का।
हा! शौक ने अब कर दिया बन्दर विदेशी ड्रेस का॥

२१३

जो बात थी परदेश की लेने की वह लेते नहीं।
जो बात थी परदेश की देने की वह देते नहीं॥
जो बात थी परदेश की सहने की वह सहते नहीं।
जो बात थी सुनने कि वो तुम हाय कुछ सुनते नहीं॥

२१४

परदेशियों का प्रेमसत् नहि जाति का गौरव लिया।
अब्जों रुपय्ये दान करते श्रेष्ठ गुण यह तज दिया॥
वे देशरक्षा के लिये निज प्राण तक अर्पण करें।
हा! देश बांधव आप के बेकार अरु भूखे मरें॥

२१५

जो दीनता आधीनता दे दो सभी परदेश को।
सब फैंकदो पतलून जाकिट केपवाले ड्रेस को ||
परदेशियों को दान में दे दो तुम्हारे द्वेष को।
इस जन्मभूमि का करो कल्याण तज के क्लेश को ||

२१६

जो वस्तु देखो मेड इन इंगलेंड इटली जर्मनी।
जापान फ्रांस अमेरिका वा अन्य देशों की बनी ||
होकर सजीव मनुष्य हम निर्जीव से है हो रहे।
घर में लगा कर आग अपने बेखबर हैं सो रहे ||

२१७

कुल नारियां जिनको हमारी है करों में धारती।
सौभाग्य का शुभ चिन्ह जिनको है सदैव विचारती||
वे चूडियां तक हैं विदेशी देखलो बस हो चुका।
भारत स्वकीय सुहाग भी परकीय करके खो चुका ||

२१८

वे तुच्छ सुइयां भी विदेशी जो न हमको मिल सके।
तो फिर पहनने के हमारे वस्त्र भी क्या मिल सके ?
माचिस विदेशी जो न लें तो हम अंधेरे में रहें।
हैं क्षुद्र छड़ियां तक विदेशी और आगे क्या कहें ?

२१९

केवल विदेशी वस्तु ही क्यों अब स्वदेशी है कहां ?
वह वेष भूषा और भाषा सब विदेशी है यहां ॥
गुण माल छोड़ विदेशियों के हम उन्हीं मे सन गये।
कैसी नकल की वाह हम नक्काल पूरे बन गये ॥

२२०

गर्दभ बना था सिंह उसकी खाल को पाकर कभी।
पर सिंह के से गुण कहां? हंसने लगे उसको सभी ॥
इस भांति के नर पुंगवों की क्या यहां बढती नहीं?
पर हाय! काले बाल पर लाली कभी चढती नहीं ॥

२२१

सम्प्रति स्वदेशी की हमें है गन्ध भी भाती नहीं।
रस केवड़ा बेला चमेली चित्त में आती नहीं॥
मस्तक लवेंडर के बिना नहिं मस्त होता है अहो।
बस शौक पूरा है हमारा देश ऊजड़ क्यों न हो?

२२२

आती विदेशों से यहां सब वस्तुएं व्यवहार की।
धन धान्य जाते हैं यहां से यह दशा व्यापार की॥
कैसे न फैले दीनता कैसे न हम भूखों मरें?
ऐसी दशा में देश की भगवान ही रक्षा करें॥

गरीबों की दशा २२३

दुर्भिक्ष मानों देह धर के घूमता सब ओर है।
हा अन्न! हा! हा! अन्न का रव गूंजता घनघोर है॥
सब विश्व में सौ वर्ष में रण मे मरे जितने हरे।
जन चौगुने उनसे यहां दस वर्ष में भूखों मरें॥

२२४

आवास या विश्राम उनका एक तरुतल मात्र है।
बहु कष्ट सहने से सदा काला तथा कृश गात्र है॥
हेमन्त उनको है कंपाता तप तपाता है तथा।
है झेलनी पड़ती उन्हें शिर पर विषम वर्षा वृथा॥

२२५

वह पेट उनका पीठ से मिल कर हुआ क्या एक है?
मानों निकलने को परस्पर हड्डियों में टेक है॥
निकले हुए हैं दांत बाहर नेत्र भीतर है धंसे।
किन शुष्क आंतों मे न जाने प्राण उनके है फंसे?

२२६

अविराम आंखों से बरसता आंसुओं का मेह है।
है लटपटाती चाल उनकी छटपटाती देह है॥
गिर कर कभी उठते यहां उठ कर कभी गिरते वहां।
घायल हुए से घूमते हैं वे अनाथ जहां तहां॥

२२७

हैं एक मुट्ठी अन्न को वे द्वार द्वार पुकारते।
करते हुए कातर वचन सब ओर हाथ पसारते॥
दाता तुम्हारी जय रहे हमको दया कर दीजिये।
माता! मरी हा! हा! हमारी शीघ्र ही सुध लीजिये॥

२२८

कृमि कीट खग मृग आदि भी भूखे नहीं सोते कभी।
पर वे भिखारी स्वप्न में भी भूख से रोते सभी॥
वे सुप्त हैं या मृत कि मूर्छित कुछ समझ पडता नहीं।
मूर्छा कि मृत्यु अवश्य है यह नींद की जडता नहीं॥

अविद्या के फल २२९

ये सब अशिक्षा के कुफल है वास है जिसका यहां।
अध्यात्म विद्या का भवन हा! आज वह भारत कहां?
धिक्कार है हम खो चुके है आज अपना ज्ञान भी।
खोकर सभी कुछ अन्त में खोया महा धन मान भी॥

२३०

हा! सैंकडों पीछे यहां दस भी सुशिक्षित जन नहीं।
हा! चाह कुलिश्रों की कहीं हो तो मिलेंगे सब कहीं॥
हतभाग्य भारत जो कभी गुरु भाव से पूजित रहा।
करती भुवन में भृत्यता सन्तान अब तेरी वहां॥

२३१

विद्या बिना अब देखलो हम दुर्गुणों के दास हैं।
हैं तो मनुज हम किंतु रहते दनुजता के पास हैं॥
दायें तथा बायें सदा सहचर हमारे चार हैं॥
अविचार अन्धाचार है व्यभिचार अत्याचार है॥

होलिका त्यौहार २३२

त्यौहार होली का अरे यह सभ्य जाती का नहीं।
पागल बने बुड्ढे युवा सब ख्याल ख्याती का नहीं॥
खर की सवारी श्वेत मुख को हाथ से काला करें।
हा! चार के कंधे चढें आश्चर्य जिंदे ही मरें॥

२३३

माला बना के जूतियों की फिर गले में भारते ।
पानी गटर का ले खुशी से सभ्य जन पर डारते ॥
ओहो! मजा वो ले उडाते धूल को फिर भागते ।
नर धन्य जग में हैं वही जो खेल ऐसा त्यागते ॥

२३४

माता पिता भाई बहिन नहिं कुछ बडों का ध्यान है
गाली बकें बेशर्म हो इज्जत न कुल की शान है ॥
दारू ब्रांडी भंग पीकर चंग लेकर हाथ में ।
गाते बजाते नाचते हैं मूर्ख टोली साथ में ॥

२३५

थे एक संपादक जिन्होंने लेख पत्रों में लिखा ।
मद्पान करते थे जिन्होंका, दृश्य सब दीना दिखा ॥
निन्दा जनक वह पत्र जा मद्पान वाले को मिला ।
पढ के शराबी का कलेजा एकदम दुख से छिला ॥

२३६

सुन लोग बिगडे इक महाशय क्रोध वश ही उठ खडे।
ले हाथ डण्डा चल दिये बस कौन् हम से है बडे ?
जा के घुसा दफतर जहां बैठे थे सम्पादक तहां ।
कां कां मचा पूछन लगे अब है वो सम्पादक कहां ?

२३७

दूबले पतले थे लेखक देख भय खाने लगे।
धर धैर्य कहे बैठो जरा यों कह के समझाने लगे ॥
उसको बुला लाता अभी बस चट से बाहिर आ गये।
निकले झपट से फिर भी वे यह दृश्य लख घबरा गये ॥

२३८

आया शराबी लट्ठ बांधा पूछता लेखक कहां ?
सम्पादकों की आज पूजा है हमें करनी यहां ॥
गंभीर स्वर उत्तर दिया तुम जाइये दफ्तर जहां ।
सुनके शराबी झपट से जाता उसे मारन चहा ॥

२३९

पहिले शराबी था उसे समझा कि सम्पादक यही।
हमला किया जा जोर से बस क्या कसर है अब रही?
पहिले शराबी ने भी सम्पादक समझ हमला किया।
फिर क्या हुआ लथपथ वहा बस होस पूरा कर लिया॥

२४०

इतने पुलिस ले आ गये श्रीमान सम्पादक तभी।
पकडे गये पीटे गये कुछ होश मे आये जभी॥
मद्यपान करना है बुरा सच आज फल ये मिल गया।
हा! मित्र हो कर लड पडे बस त्याग दो निश्चय किया॥

महा भारत २४१

क्या देर लगती है बिगडते जब बिगडने पर हुए?
फिर क्या परस्पर बन्धु ही तैयार लडने पर हुए?
आखिर महा भारत समर का साज सज ही तो गया।
डंका हमारे नाश का बेकार बज ही तो गया॥

२४२

हां, शोचनीय परंतु ऐसा कलह भी होगा नहीं।
तू ही बता हे काल! ऐसा हाल देखा है कहीं॥
हा! बन्धुओं के ही करों से बन्धु कितने कट मरे।
यह भव्य भारत अन्त में बन ही गया मरघट हरे॥

२४३

इस सर्वनाशी युद्ध का वह दृश्य कैसा घोर था?
उस ओर था यदि पुत्र को लडता पिता इस ओर था॥
सन्तान ही के रक्त से यह मातृभूमि सनी यहां।
उस स्वर्ग की सी वाटिका की हाय राख बनी यहां॥

२४४

इस भांति जब बलहीन होकर देश ऊजड़ हो गया।
फिर वह हुआ जिससे कि अब सर्वस्व अपना खो गया॥
घुस कर शकादि अनार्य गण निर्भय यहां बढने लगे।
निःशक्त देख श्रृगाल घायल सिंह पर चढने लगे॥

यवन राजत्व २४५

जो हम कभी फूले फले थे राम राज्य वसन्त में।
हां देखनी हमको पड़ी औरंगजेबी अन्त में॥
है कर्म का ही दोष अथवा सब समय की बात है।
होता कभी दिन है कभी होती अंधेरी रात है॥

२४६

जो हो हमारी दुर्दशा का और अंत नहीं रहा।
हा! क्या कहें? कितना हमारा रक्त पानी सा वहा?
होकर मनुज कृमि कीट से भी तुच्छ हम लेखे गये।
दृष्टान्त ऐसे वहुत ही कम विश्व मे देखे गये॥

२४७

रहते यवन थे रक्त रंजित तीक्ष्ण असि ताने खड़े।
चोटी नहीं तो हाय हमको सीस कटवाने पडे॥
जीते हुए दीवार में हम लोग चुनवाये गये।
वल से असंख्यक आर्य यों इसलाम मे लाये गये॥

२४८

हा! स्वार्थवश हमको अनेकों घोर कष्ट दिये गये।
कितने अवश अवला जनों के धर्म नष्ट किये गये॥
घर में सुता के जन्म से होती बडों को थी व्यथा।
कुल मान रखने को चली थी बालिकावध की प्रथा॥

२४९

हा! निष्ठुरों के हाथ से सुर मूर्तियां खण्डित हुईं।
उन मंदिरों की वस्तुओं से मस्जिदें मण्डित हुईं॥
जजिया सरीखे कर लगे यह बात सिद्ध हुई सही।
जो प्राप्त हो परतंत्रता में दुःख थोड़ा है वही॥

अकबर २५०

कम कीर्ति अकबर की नहीं सत्शासकों की ख्याति में।
शासक न उसके सम सभी होंगे किसी भी जाति में॥
हो हिन्दुओं के अर्थ हिंदू यवन यवनों के लिये।
हठ पक्षपात तथा दुराग्रह दूर उसने थे किये॥

२५४

सौभाग्य से जब मुक्ति पाई अपहरण के क्लेश से।
दुर्भाग्य से तब मिट चले थे वीर प्रायः देश से॥
अतएव इस ही कुप्रथा का फिर सुधार हुआ नहीं।
प्राचीन सभ्य सुरीतियों का फिर प्रचार हुआ नहीं॥

२५५

जिस भीति से यह रीति फैली नष्ट वह तो हो गई।
पर बालिकाओं बालकों के नाश की जड बो गई॥
दूषित पवन तो मन्द गति से बह रहा उद्यान मे।
रोगाणु पर फैला रहा उसके निरोगी प्राण में॥

कन्या विक्रय २५६

आओ लखो रौरव नरक का दृश्य भाई है यहीं।
कौड़ी न खरचे की लगेगी दूर भी जाना नहीं॥
धन लोलुपों ने ही बनाया दुखद कुम्भी नर्क है।
लखते हृदय थर्रा गया इसमें नहीं कुछ फर्क है॥

२५७

परिणाम होगा अति बुरा ऐसे भयङ्कर कर्म का।
यह चिह्न है इस मारवाड़ी जाति के ही गर्त का॥
इस विषय पर इकचित हो अब ध्यान पूरा दीजिये।
गिरती हुई जाती कि रक्षा हो सके तो कीजिये॥

२५८

जो अल्पवय की बच्चियों को बेचते नीलाम में।
वे दुष्ट इनको हैं पटकते हा! नरक के धाम में॥
जिस बालिका का स्वल्प धन उनके लिये बेकाम है।
धिक् धिक् हजारों बार वे लेते इन्हीं के दाम है॥

२५९

तुम इक धनी मृतप्राय को तो निज सुता दोगे सही।
पर इक गुणी सुन्दर युवक निर्धन को देओगे नहीं॥
हो जानते बुड्ढा वरष दो चार मे मर जायगा।
इस अज्ञ बाला का जनम हा! धूल मे मिल जायगा॥

२६०

है द्रव्य से ही काम तुमको वह भले ही नष्ट हो।
या गैर मजहब धार का ही वह भले ही भ्रष्ट हो॥
तृष्णा तुम्हारी पापियो! यों पाप करती जायगी।
पर ध्यान रक्खो जाति भी फिर नष्ट ही हो जायगी॥

२६१

धनियो! भला कब तक व्यसन की बान छोडोगे नहीं।
अब और कब तक अज्ञता की आन तोडोगे नहीं॥
किंवा कृपण कब तक रहोगे लोभ को पाले हुए।
क्या तुच्छ धनवाले हुए तुम जो न मन वाले हुए॥

२६२

कमला विलास विलोलतर चपला प्रकाश समान है।
धन लाभ का साफल्य बस सत्कार्य विषयक दान है॥
हा! देश का उपकार करना अब तुम्हें कब आयगा।
विद्या कला कौशल वढाओ धन स्वयं बढ जायगा॥

२६३

लाखों अपव्यय हैं तुम्हारे एक तो सद्व्यय करो।
चाहो न जो तुम कीर्ति तो अपकीर्ति का तो भय करो॥
क्या मातृभूमि वृथा तुम्हारी विश्व में जननी बनी।
देते करोडों देश हित हैं अन्य देशों के धनी॥

२६४

हम पुत्र तीस करोड़ जिसके देश वह दुःखी रहे।
अनुचित नहीं है फिर कहीं कोई हमें जो पशु कहे॥
हे भाइयो! हा! दिवस देखो मातृ भू माता सही।
जो बन पड़े जिससे यहां है इस समय थोडा वही॥

कर्म २६५

उन्मत्त राजा कर्म यह पर प्रार्थना सुनता नहीं।
अपना विचारा ही करे गुण लक्ष्य मे धरता नहीं॥
तप संजमादिक तत्व को वह मान भी देता नहीं।
बस फर्ज अपना ही बजाता अन्त कुछ लेता नहीं॥

२७२

अन्याय ऐसे पुरुष होकर हाय! हम सहते रहे।
करके न कुछ उद्योग विधि की बात ही कहते रहे॥
हम चाहते तो एक होकर क्या न कर सकते भला।
पर एकता का नाम लेते ही यहां घुटता गला॥

ब्रह्मचर्य २७३

सब आश्रमों मे परम पावन ब्रह्मचर्य प्रधान है।
नर का कहो इस व्रत बिना होता कहां कल्याण है?
बलबुद्धि विद्या और वैभव आदि का दाता यही।
इसके गुणों के गीत अब भी गा रही सारी मही॥

२७४

अब ब्रह्मचर्य विहीन भारत दीन है इस काल में।
निर्वीर्य निर्बल हो फंसा है व्याधियों के जाल में॥
चिरआयु अब होती नहीं स्वल्पायु का ही राज है।
देखो जहां तहं मग्न रहा अब बाल ब्याह कुसाज है॥

२७५

जो आज कहलाते युवा वे वृद्ध से भी वृद्ध हैं ।
हां, काम के किंकर रसीले और रसिक प्रसिद्ध हैं ॥
श्रीहीन मुरझाये हुए जन दीख पडते हैं घने ।
मन्दाग्नि और प्रमेह तरुणों के सखे सच्चे बने ॥

२७६

जब नींव ही दृढ है नहीं कैसे बने मंदिर भले ।
जब खोखली जड़ हो गई कैसे विटप फूले फले ॥
फैला हुआ चहुं ओर देखो व्याधियों का जाल है ।
जिसको लखो अब तो वही चलता कटीली चाल है॥

२७७

हा भीष्म से योद्धा भला अब देश में होते कहां ?
मच्छर बने लाखों पड़े हैं देखलो अब तो यहां ॥
अब मार की मारें मरोरें दे रहीं इस काल हैं ।
देखो हजारों छोकरे अब प्रेम मे बेहाल हैं ॥

२७८

हा! ब्रह्मचर्याभाव से इस देश का जो हाल है।
यदि आंख है तो देखलो कैसा गिरा इस काल है॥
बल बुद्धि विद्या अर्थ में संसार से पीछे परा।
रूढता अरु मूढता में ज्ञान है परथम धरा॥

२७९

आर्यत्व का अस्तित्व रखना यदि चहो संसार में।
फिर एक बार सुसभ्य हो रहना चहो संसार मे॥
तो ब्रह्मचर्य पवित्र व्रत धारण करो अति प्रेम से।
भोगो सुखों का सार जो जीवन निभावो नेम से॥

२८०

सब औषधी में देखलो इक ब्रह्मचर्य महान है।
व्रत दान पूजा जप तपों मे ब्रह्मचर्य प्रधान है॥
दे बुद्धि बल वपु कांति सब दिन दिव्य गति दातार है।
सय ताप हर्त्ता सौख्य कर्ता शान्ति का भंडार है॥

तप २८१

उपवास कर भूखा रहन में तप समझते नर कई ।
सरदी सहन औ कड़कड़ाती धूप खाने पर कई ॥
कोई खडे वरपात में रहते अचल तपमानते ।
तप रेत में गड़ जाने से ओंधे लटकना जानते ॥

२८२

सोते कई लोह कील पै या जागते सारी निशा ।
पीते कई रख घोल के करते भ्रमण चारों दिशा ॥
गो मूल पीते धूल खाते स्येन खाते मोह से ।
नख बढाते काटते रहते पुरानी शोध से ॥

२८३

तप बाल रखने मे कहें या मूंड मुंडवाना कहें ।
भस्मी लगाने में कहें या दण्ड रखने में चहें ॥
ऐसा अधूरा अर्थ कइ लोगों के दिल में घुस गया ।
परमार्थ क्या उपवास का सच्चा हृदय से खस गया ॥

२८४

जो जो रही भूलें उन्हें निज आत्म औगुण देखिये।
मद क्रोध कामादिक रिपु जिनको जरा अब लेखिये॥
अभ्यन्तरादिक दुर्गुणों को मेट कर सद्गुण धरें।
उत्कृष्ट तप यह जानिये संसार सागर से तरें॥

मन्दिर और महन्त २८५

कैसी भयङ्कर अब हमारी तीर्थ यात्रा हो रही।
उन मंदिरों मे ही विकृति की पूर्ण मात्रा हो रही॥
अड्डे अखाडे बन रहे हैं ईश के आवास भी।
आती नहीं है लोकलज्जा अब हमारे पास भी॥

२८६

हा! पुण्य के भण्डार में है भर रहीं अघ राशियां।
है देव आर महन्त जी ही देवियां हैं दासियां॥
तन मन तथा धन भक्त जन अर्पण किया करते जहां
वे भण्ड साधु सुकर्म का तर्पण किया करते वहां॥

२८७

अब मन्दिरों में रामजनियों के बिना चलता नहीं ।
अश्लील गीतों के बिना वह भक्ति फल फलता नहीं ॥
वे चीर हरणादिक वहां प्रत्यक्ष लीला जाल हैं ।
भक्त स्त्रियां हैं गोपियां गोस्वामि ही गोपाल हैं ॥

पुरुष जाति का अत्याचार २८८

देकर प्रलोभन सैंकड़ों पथ भ्रष्ट है कीना उन्हे ।
फिर जाति च्युत करके भयङ्कर क्लेश ताप दिया उन्हें ॥
जो जाति पापाचार करती वह न दण्डित हो रही ।
जिस पर कि अत्याचार होता दण्ड भी पाती वही ।

२८९

हे वाचको! इस अधमतर कृति को तनिक धिक्कारिये ।
अपने हृदय पर हाथ रख कर एकबार विचारिये ॥ ।
इस जन्म में हम तो असंख्य विवाह सकते नारियां ।
गति एक पति तक कर सकेंगी किंतु वे बेचारियां ॥

२९०

हम चार जीवित पत्नियों पर चार ला सकते अभी।
पर अन्य का पति हीन हो भी ध्यान वे न करें कभी॥
है आठ की लाता वधू वय वृद्ध की हो साठ की।
पर जन्म भर कामाग्नि में विधवा जलेगी आठ की॥

२९१.

लज्जित न होते हम निरत हो घोर अत्याचार मे।
चुपचाप सहतीं क्लेश वे इस पाप मय व्यापार मे॥
इससे अधिक अन्याय होगा और क्या संसार में?
तुम डूब जाओगे किसी दिन आंसुओं की धार में॥

२९२

वह बाल बिधवा जन्म भर विरहाग्नि में जलती रहे।
आंसू वहा कर शोक मे नित हाथ ही मलती रहे॥
हम वृद्ध होकर भी सदा ऐश्वर्य सुख भोगा करें।
विरहाग्नि में वे युवतियां भी किन्तु तिलतिल जल मरें॥

हिन्दु जाति २९३

बीती अनेक शताब्दियां पर हाय! तू जागी नहीं।
यह कुंभकर्णी नींद तू ने तनिक भी त्यागी नहीं॥
देखें, कहीं पूर्वज हमारो स्वर्ग से आकर हमें।
आंसू बहावे शोक से इस वेष में पाकर हमें॥

२९४

अब भी समय है जागने का देख आंखे खोल के।
सब जागता है जग तुझे जग कर स्वयं जय बोल के॥
निःशक्त यद्यपि हो चुकी है किन्तु तू न मरी अभी।
अब भी पुनर्जीवन प्रदायक राज है सन्मुख सभी॥

२९५

हम कौन थे? क्या होगये हैं? जानलो इसका पता।
जो थे कभी गुरु हैं न उनमें शिष्य की भी योग्यता॥
जो थे सभी से अग्रगामी आज पीछे भी नहीं।
है दीखती संसार मे विपरीतता ऐसी कहीं॥

२१६

जिन पूर्वजों का वह अलौकिक सत्य शील निहारलो।
फिर ध्यान से अपनी दशा भी एक बार विचारलो ॥
जो आज अपने आप को यों भूल हम जाते नहीं।
तो यों कभी सन्तान मूलक शूल हम पाते नहीं ॥

२१७

किस भांति जीना चाहिये किस भांति मरना चाहिये?
सो सब हमें निज पूर्वजों से याद करना चाहिये ॥
पद चिह्न उनके यत्न पूर्वक खोज लेना चाहिये।
निज पूर्व गौरव दीप को बुझने न देना चाहिये ॥

२१८

हे भाइयो! सोये बहुत अब तो उठो जागो अहो।
देखो जरा अपनी दशा आलस्य को त्यागो अहो ॥
कुछ पार है क्या क्या समय के उलट फेर न हो चुके।
अब भी सजग होंगे न क्या? सर्वस्व को ही खो चुके ॥

२९९

विष पूर्ण ईर्ष्या द्वेष पहले शीघ्रता से छोड़ दो।
घर फूंकने वाली फुटेली फूट का सिर फोड़ दो॥
मालिन्य से मुंह मोड़ कर मद मोह के पद तोड़ दो।
टूटे हुए वे प्रेमबन्धन फिर परस्पर जोड़ दो॥

३००

बैठे हुए हो व्यर्थ क्यों? आगे बढो ऊंचे चढो।
है भाग्य की क्या भावना अब पाठ पौरुष का पढो॥
है सामने का ग्रास भी मुख में स्वयं जाता नहीं।
हा! ध्यान उद्यम का तुम्हें तो भी कभी आता नहीं॥

नव युवक ३०१

हे नव युवाओ! देश भर की दृष्टि तुम पर ही लगी।
है मनुज जीवन तुम्हीं मे ज्योति सब से जगमगी॥
दोगे न तुमतो कौन देगा योग देशोद्धार में?
देखो कहां क्या हो रहा है आज कल संसार में?

३०२

जो कुछ पढो तुम कार्य में भी साथ ही परिणत करो।
सब भक्तवर प्रह्लाद की निम्नोक्ति को मन में धरो ॥
कौमार में ही भागवत धर्माचरण करलो यहां।
नर जन्म दुर्लभ और वह भी अधिक रहता है कहां?

३०३

दो पथ असंयम और संयम हैं तुम्हें अब सब कहीं।
पहला अशुभ है दुसरा शुभ है इसे भूलो नहीं ॥
पर मन प्रथम की और ही तुमको झुकावेगा कभी।
यदि तुम न संभलोगे अभी तो फिर न संभलोगे कभी ॥

अस्थि का निर्घोष ३०४

काकुल्य पर कोई मनुज का पद अचानक से पडा।
सत्वर तडित सम आस्थि बोली गर्व करता तू बडा ॥
सौदर्य तो तेरी तरह ही प्राप्त कीना था कभी।
किंतु कर्मो के उदय से यह दशा पाई अभी ॥

३०५

मतिशून्य नर! दिल में जरा तू प्रेम लाया कर मुवे ।
मत मत्त ो तू गर्व में न. ेह से पाये हुए ॥
गर्व तेरा एक दिन में ही हवा हो जायगा ।
अरमान दिल का एक दिन सहसा सभी खो जायगा॥

३०६

क्या तुझे मालुम न थी कि मैं पडी हुं इस जगह ।
ऐसी व्यथा तेने करी ज्यों लवण घावों पर अह ॥
श्रेष्ठ भारतवर्ष सारा सद्गुणों का धाम है ।
पर तुम सरीखों ने किया यह नाम ही बदनाम है ॥

३०७

कंज पुंजों से रची शय्या शयन के योग्य थी ।
कंजनयनी कंजमुख वीरस्नुषा मम भोग्य थी ॥
मृदुल इच्छित रेशमी ले आदि मेरे वस्त्र थे ।
जिनमें जडित थे मूल्य धारी रत्न ऐसे शस्त्र थे ॥

३०८

अक्षि दोनों देखने में हर्ष पूर्ण अभीक्ष्ण थी ।
कर्ण से सुनने में पूरी शक्ति भी अति तीक्ष्ण थी ॥
ऐश के सामान सारे ही हमारे पास थे ।
उच्च आयत और सुन्दरता भरे आवास थे ॥

३०९

नृत्य केकी की तरह करते उमडता जब मदन ।
लावण्य से तो भासता चन्द्रस्थ मानों है वदन ॥
शारीरिकी अरु मानसिक इत्यादि होते थे मदन ।
शत श्रेष्ठ लक्षण से भरे हम दीखते मानों सदन ॥

३१०

होते जहां थे कहकहे मचते जहां थे चहचहे ।
हम दिल को खुश करते जहां मन की तरंगों में बहे ॥
किंतु सारे ऐश के सामान हा! जाते रहे ।
ना वे रहे ना ये रहे रुद्राग्नि ज्यों तृण को दहे ॥

३११

ऐसा दुरित ने आन कर चक्कर हमारे को दिया ।
सामर्थ्य बाहिर है कथा सुखहीन दैन्योचित किया ॥
ऐसी निडरता से तू हम पर पैर मत रख दुर्हिया ।
गुरुवर्य ने देवानुप्रिय! यह उच्च पद तुमको दिया ॥

प्रभाव ३१२

यों जन्म से उत्साह ओज विहीन हम होते गये ।
श्री, बुद्धि, विद्या, कांति, बल साहस सभी खोते गये ॥
जागृति चमत्कृति मिट गई चिर नींद में सोते गये ।
बोते गये अघबीज मुख नित अश्रु से धोते गये ॥

३१३

व्यभिचार पापाचार फैला पूत भारतवर्ष में ।
अपकर्ष का तम छा गया उज्वल प्रखर उत्कर्ष में ॥
धारा विषाद प्रमाद की बहने लगी उस हर्ष में ।
भारत पतित यों हो गया उन्नति पतन संघर्ष में ॥

३१४

परिणीत शिशु होने लगे सति की प्रथा मिटती गई।
विधवा स्त्रियों की वृद्धि संख्या में लगी होने नई ॥
इस देश में यों मातृजाति दशा पतन होता रहा।
स्वार्थी पुरुष की जाति करती अनाचार रही महा ॥

भाषा और व्याकरण ३१५

प्राचीन ही जो है न जिससे अन्य भाषाएं बनी।
भाषा हमारी देववाणी श्रुति सुधा से है सनी ॥
है कौन भाषा यों अमर व्युत्पत्ति रूपी प्राण से।
है अन्य भाषा शब्द उसके सामने म्रियमाण से ॥

३१६

निकला जहां से आधुनिक यह भिन्न भाषा तत्व है।
रखती न भाषा एक भी संस्कृत समान महत्व है ॥
वैयाकरण पाणीनि सदृश विश्व भर मे कौन है ?
इस प्रश्न का सर्वत्र उत्तर उत्तमोत्तम मौन है ॥

हिन्दुस्थान की कला कौशल्य २१७

अब लुप्त सी जो हो गई रक्षित न रहने से यहां ।
सोचो तनिक कौशल्य की कितनी कलाएं थी यहां ?
लिपि बद्ध चौसठ नाम उनके आज भी हैं दीखते ।
दश चार विद्या विज्ञ होकर हम जिन्हें थे सीखते ॥

२१८

हां, शिल्प विद्या वृद्धि में तो थी यहां यों अति हुई ।
होकर महा भारत इसी से देश की दुर्गति हुई ॥
भय कृत भवन में यदि सुयोधन थल न जलको जानता ।
तो पांडवों के हास्य पर यों शत्रुता क्यों ठानता ॥

नगर जन गुण वर्णन २१९

व्यसन था तो बस यही एक दान का दिन रातजी ।
जो लोभ था तो बस यही होना सदा विख्यात जी ॥
थे भीरु सब दुष्कृत्य में गुण ग्रहण मे नहि तोष था ।
मूक थे पर दोष में अरु धर्म में मन जोश था ॥

३२०

पर नार को देखन समय रहते निरंतर अंध थे ।
पर द्रव्य हरने में सदा वे पांगुले मति मंद थे ॥
पर दोष सुनने में सदा रहते बधिर वे कान से ।
तज द्वेष निर्मल भाव से निज दोष सुनते ध्यान से ॥

चित्रकारी ३२१

निज चित्रकारी के विषय में क्या कहें क्या क्रम रहा?
प्रत्यक्ष है या चित्र है यों दर्शकों को भ्रम रहा ॥
इतिहास काव्य पुराण नाटक ग्रन्थ जितने दीखते ।
सब से विदित है चित्र रचना थे यहां सब सीखते ॥

३२२

होती न यदि वह चित्र विद्या आदि से इस देश में ।
तो धैर्य धरते किस तरह प्रेमी विरह के क्लेश मे ?
अब तक मिलेगा सूक्ष्म वर्णन चित्र के प्रति भाग का।
साहित्य मे भी चित्र दर्शन हेतु है अनुराग का ॥

जमाने की खूबी ३२३

जो त्राण करते थे प्रथम वे आज लेते प्राण हैं ।
थे जो वचन रस के भरे वे मर्म वेधी बाण हैं ॥
जो पूर्व मे थे मित्र क्या वे आज शत्रु है नहीं ?
इस दुःख दायी हाल को मुंह से कहा जाता नहीं ॥

३२४

जिनके हृदय रहते सदा थे आर्द्र करुणा भाव से ।
लो देख उनको आज निष्ठुर पाप के सद्भाव से ॥
जो धीर और गंभीर थे वे तुच्छ उर धारी बने ।
थे बीम रक्षक पूर्व में जो आज वे भक्षक बने ॥

दारिद्र ३२५

रहता प्रयोजन से प्रचुर पूरित जहां धन धान्य था ।
जो स्वर्ग भारत नाम से संसार मे सम्मान्य था ॥
दारिद्र दुर्धर अब वहां करता निरंतर नृत्य है ।
आजीविका अवलम्ब बहुधा भृत्य का ही कृत्य है ॥

३२६

देखो जिधर अब बस उधर ही है उदासी छा रही।
काली निराशा की निशा सब ओर से है आर ही॥
चिंता तरंगे चित्त को बेचैन रखती हैं सदा।
अब नित्य ही आती यहां पर एक नूतन आपदा॥

वैद्यक ३२७

उस वैद्य विद्या के विषय में अधिक कहना व्यर्थ है।
सुश्रुत चरक रहते हुए सन्देह रहना व्यर्थ है॥
अनुवाद कर्त्ता आज भी उपहार उनके पा रहे।
हैं आर्य आयुर्वेद के सब देश सद्गुण गा रहे॥

आज कल की डाक्टरी ३२८

है आज कल की डाक्टरी जिससे महा महिमामयी।
वह आसुरी नामक चिकित्सा है यहीं से ली गई॥
नाडी नियम युत रोग के निश्चित निदान हुए यहां।
सब औषधों के गुण समझकर रस विधान हुए यहां॥

स्त्रियोंकी अज्ञानता ३२९

आज कल माता यहां भेरू भवानी पूजती ।
पीर पैगम्बर मनाती पाप से नहीं धूजती ॥
हा! शीतला पूजें करें कर जोड के अरदास जी ।
एक लड़का दो हमे पुरो हमारी आस जी ॥

३३०

फिर चढाती माल आता स्वान खाता चैन से ।
मूत देवी पर करें तुम देखती हो नैन से ॥
तोड़ नहीं सकती जो देवी टांग कुत्ते की अगर ।
तो कहां से पुत्र देगी सोचलो बहनो जिगर ॥

जौहर ३३१

चित्तौर चम्पक ही रहा यद्यपि यवन अलि होगये ।
धर्मार्थ हलदी घाट में कितने सुभट बलि होगये ॥
कुल मान जब तक प्राण तब यह नहीं तो वह नहीं ।
भारत अरु मेवाड़ में ऐसी कथा गूंजत रही ॥

जोहर २३२

विख्यात वे जौहर यहां के आज भी हैं लोक मे।
हम मग्न अब भी पद्मिनी सी देवीयों के शोक में॥
आर्य स्त्रियां निज धर्म पर मरती हुई डरती नहीं।
साद्यन्त सर्व सतीत्व शिक्षा विश्व मे मिलती यहीं॥

दृष्टि राग २३३

ज्ञानी धराकर नाम करते काम हैं अज्ञान के।
उपकार बुद्धि है नहीं हैं आप भूखे नाम के॥
थोडे दिनों की जिंदगी बरबाद क्यों करते इसे॥
जीना धरापर है कहां तक यह खबर क्या है किसे॥

२३४

त्यों पक्षपाती लोग भी है आज बहुतर होरहे।
इन पक्षपातों से सदा निज सम्पदा को खोरहे॥
कैसे बने फिर वे गुणी गुणवान के रागी नहीं।
क्या कीर्ति होसकती उन्होंकी आप जो त्यागी नहीं॥

धन महिमा ३२५

हैं वित्त जिसके पास मे पंडित वही जाता गिना ।
है श्रेष्ट जो गुण दोषहो जाते अहो धन के बिना ॥
धनवान के होते हजारों मित्र भी देखो यहां ।
पर ज्ञान हो सत्कर्म के बिन नाम होता है कहां ?

३२६

हैं कार्य जो करते नहीं अरु बोलते हैं जोर से ।
धिक्कार उनको सर्वदा पड़ती यहां सब ओर से ॥
पर बोलते मुख से नहीं जो कार्य करते हैं सदा ।
गुण गान उनके विश्व में सब लोग करते हैं तदा ॥

अमृत कहां ? ३२७

मिल पंडितोंने वाद यह ठायाकि अमृत हैं कहां ?
कहा एकने मधु मे सुधा तासे कि मीठा है महा ॥
है नववधू मुख में सुधा ललचाय सब मूर्छा लहै ।
शशि मे सुधा निधि में सुधा अरु इन्द्र में कोई कहे ॥

३३८

जो इन्द्र पे पीयूष हो तो इन्द्र क्यों होते नये ।
पीयूष कमला मे रहा है इस लिये सब जन चहे ॥
धन में यदि अमृत रहेतो त्याग क्यों मुनि जन करें,
संपूर्ण अमृत मय भरी वाणी प्रभू की है सिरे ॥

वर्तमान सभाएं ३३९

दिन दिन सभाएं भी भयङ्कर भेद भाव बढा रहीं ।
प्रस्ताव करके ही हमें कर्त्तव्य पाठ पढा रहीं ॥
पारस्परिक रण रंग से अवकाश उनको है कहां ?
मतभिन्नता का शत्रुता ही अर्थ कर लीजे यहां ॥

३४०

चन्दे विना उनका घडीभर काम कुछ चलता नहीं ।
पर शोक है तो भी यहां समुचित सुफल फलता नहीं॥
हैं वीर ऐसे भी बहुत जो देश हित के व्याज से ।
अपने लिए हैं प्राप्त करते दान मान समाज से ॥

आडम्बर ३४१

यद्यपि उड़ा बैठे कमाई बाप दादों की सभी।
पर ऐंठ वह अपनी भला हम छोड सकते हैं कभी ॥
भूषण बिके ऋण भी बढे पर धन्य सब कोई कहे।
होली जले भीतर न क्यों बाहर दिवाली ही रहे ॥

३४२

अब आय तो है घट गई पर व्यय हमारा बढ गया।
तिसपरविदेशी सभ्यता का भूत हम पर चढ गया॥
ऋण भार दिन दिन बढ रहा है दब रहे हैं हम यहां।
देना जिन्हों को कुछ नहीं भी पास उनके है कहां ॥

चेतावनी ३४३

हे मानवो! अब नयन खोलो विश्वगति को देखलो।
अपनी पतित अवनत दशा को और मति को देखलो॥
अब भी नहीं तुमने किया यदि अन्त अत्याचार का।
यदि नित्य बढता ही रहा यह पाप स्वेच्छाचार का ॥

३४४

जो आज अत्याचार पीडित हो रहीं जो बालिका ।
होंगी कभी वे देखना दुर्धर्ष रण सञ्चालिका ॥
हम खो चुकेंगे शेष जो कुछ है हमारी लालिमा।
अपने करों से ही लगालेंगे मुखों में कालिमा ॥

दानी ३४५

दाता सदा प्रिय लोक है द्रविणेश लोक प्रिय नहीं ।
सब याचते जलधर यथा सिन्धुपति कोई नहीं ॥
अत एव सब दानी बनो मानी कुसंगति को हरो ।
सत्कर्म को तन से करो मन से करो धन से करो ॥

बिना ज्ञानमनुष्य भूभार हैं ३४६

आहार निद्रा भोग भय पशु मानवों में समान है ।
केवल अधिक है तो मनुज में एक ही बस ज्ञान है ॥
उस ज्ञान से जो हीन है वह नर पशु अनुसार है ।
संसार में बिन ज्ञान जीवों का तनु भूभार है ॥

सज्जन संपदा ३४७

गौ भैंस खाकर घास देती नित्य देखो क्षीर है ।
पीकर जिसे मतिमान जन बनते हजारों वीर हैं ॥
अरु ताप सह कर भी अहो! परिपक्व फल देते सदा।
पर के लिये ही विश्व में होती है सज्जन संपदा ॥

धर्म ३४८

भोग को भय रोग का है वित्त को भय राज का ।
वृद्धत्व का भय रूप को भय देह को यम राज का ॥
ये वस्तुयें संसार में सब ही भयंकर जानलो ।
हा! सब अभय दातार केवल धर्म को ही मानलो ॥

३४९

निज शत्रुओं के भी गुणों का गान करना चाहिये ।
सज्जन जनों का विश्व मे सन्मान करना चाहिये ॥
सच ही सदा वदना कभी नहीं लोप करना सत्य का।
है श्रेष्ठ जन जग मे वही जो पान करता पथ्य का ॥

सज्जन पुरुष ३५०

जो जान करके दोष है पर के कभी कहते नहीं ।
होकर स्वयं गुणवान निज गुण गान जो करते नहीं ॥
उन सज्जनों की फैलती है कीर्ति सर्व दिगंत में ।
वे लोक प्रिय होकर सदा हैं स्वर्ग पाते अन्त मे ॥

धर्म हीन मनुष्य ३५१

पानी बिना जैसे सरोवर पुष्प बिन सौरभ यथा ।
लक्ष्मी बिना प्रभुता बिना जल के जलद शोभे यथा ॥
पति हीन नारी काव्य रस बिन साधु विद्या बिन यथा ।
बिन धर्म के संसार मे हो ज्ञात है प्राणी तथा ॥

पंच के गुण ३५२

धर्म धारी श्रेष्ठ कुल आचार प्रतिभा युक्त हो ।
शास्त्र का ज्ञाता विख्याता लोभ आलस मुक्त हो ॥
दक्षता से कार्य करता मान्य वर गुण और हैं ।
काम करने की लगन वो पंच शिर का मौर है ॥

वेश्या नचाने से धिक्कार ३५३

वेश्या नचाते है बुला कर धर्म प्रीति तोड़ के।
उनकी अनागत सपद्‌ा बैठे न क्यों मुंह मोड़ के ॥
धिक्कार तबले दे रहे कहते मंजीरें है किन्हे '
वेश्या उठा कर हाथ करती है इन्हें धिग है इन्हे ॥

हमारी विद्या बुद्धि ३५४

आये नहीं थे स्वप्न मे भी जो किसी के ध्यान में।
वे प्रश्न पहले हल हुए थे एक हिन्दुस्थान मे ॥
सिद्धान्त मानव जाति के जो विश्व मे वितरित हुए।
वस भारतीय तपोवनों मे थे प्रथम निश्चित हुए ॥

अंध परंपरा ३५५

सब अंग दूषित हो चुके हैं अब समाज शरीर के।
संसार में कहला रहे है हम फकीर लकीर के ॥
क्या बाप दादों के समय की रीतियां हम तोड़दें ?
ब रुग्ण होंतों क्यों न हम भी स्वस्थ रहना छोड़दे ?

अभक्ष्य ३५६

नवनीत मांस मधू उदूम्बर पंचमी मदिरा खरी ।
अज्ञान फल बहु बीज फल बैंगन करा दुर्गुण भरी ॥
बर्फ बेदल तुच्छ फल आचार फीम पिछान के ।
रस चलित कच्ची मट्टि भोजन रात्रि त्यागो जान के ॥

फैशन ३५७

चहरा बनाते रोज अपनी मूंछ दाढी काटकर ।
गोर बनने के लिये मलते हमेशा पाऊडर ॥
शिर जमाते बाल पटियां पाड कर लेडी बने ।
बाहर बने बाबू बड़े घर में न खाने को चने ॥

आदर्श ३५८

गौतम वशिष्ट समान मुनिवर ज्ञान दायक थे यहां ।
मनु याज्ञवल्क्य समान सत्तम विधि विधायक थे यहां ॥
वाल्मीकि वेदव्यास से गुण गान गायक थे यहां ।
पृथु भक्त रघु से अलौकिक लोक नायक थे यहां ॥

राजा हरिश्चन्द्र की अटल प्रतिज्ञा ३५९

लक्ष्मी नहीं सर्वस्व जावे सत्य छोडूंगा नहीं।
अन्धा बनूं पर सत्य से सम्बन्ध तोडूंगा नहीं॥
निज सुत मरण स्वीकार है पर वचन की रक्षा रहे।
है कौन जो उन पूर्वजों के शील की सीमा कहे॥

हिंदुस्थान की कारीगरी ३६०

रक्खा नली में बांस को जो थान कपडे का नया।
आश्चर्य! अम्बारी सहित हाथी उसी से ढक गया॥
वे वस्त्र कितने सूक्ष्म थे कर लो कई जिनकी तहें।
शहजादियों के अंग फिर भी झलकते जिनमें रहें॥

३६१

थे मुग्ध वस्त्रों पर हमारे अन्य देशी सर्वथा।
यूरोप के ही साहबों की हम सुनाते हैं कथा॥
वे लोग वस्त्रों को यहां के थे सदैव सराहते।
निज देश के पट मुफ्त में भी थे न लेना चाहते॥

हिन्दुस्थान के धर्मोपदेशक ३६२

धर्मोपदेशक विश्व में जाते यहां से थे सदा।
शिक्षार्थ आते थे जहां संसार के जन सर्वदा ॥
अज्ञान के अनुचर वहां अब फिर रहे फूले हुए।
हम आज अपने आप को भी हैं स्वयं भूले हुए ॥

३६३

है वेश तक उनका विदेशी और यह उपदेश है।
त्यागो विदेशी वस्तुएं पहिला यही उद्देश है ॥
लो पीट दो सब तालियां उपदेश है कैसा खरा।
उपदेशको? पर आप अपनी ओर तो देखो जरा ॥

पुण्य पाप का खेल ३६४

नर एक का संसार में लाखों करें सन्मान जी।
नर एक भूखा रो रहा मुट्ठीन मिलता धान जी ॥
नर एक हाथी अश्व पर चढके चले सुख पाल जी।
नर एक नित बोझा लदे शिर के उडे सब बाल जी ॥

दुर्लभ वस्तुएं ३६५

नर जन्म पाना श्रेष्ठ कुल शुभ जाति का मिलना कठिन।
धन धान्य आयू दीर्घ अरु आरोग्यता का हो बदन॥
सुत मित्र तिय विद्या विभव स्वाधीन इन्द्रिय मनदमन।
प्रभु भक्ति और उदारता ये पुण्य द्वारा हो मिलन॥

संसार की दशा ३६६

संसार में दुख की दशा रहती निरंतर है नहीं।
पर सौख्य युत भी तो यहां रहता सदा कोई नहीं॥
ज्यों पक्ष हैं दो मास के वैसी दशा संसार की।
क्या है खबर किसको कहो दुर्दैव पारावार की॥

आत्माभिमान ३६७

निश्चय यवन राजत्व में ही हम पतित थे हो चुके।
बल और वैभव आदि अपना थे सभी कुछ खो चुके॥
पर यह दिखाने को कि भारत पूर्व में ऐसा न था।
आत्मावलम्बी भी हुए कुछ लोक हम में सर्वथा॥

महाराणा प्रतापसिंह ३६८

राना प्रताप समान तब भी शूर वीर यहां हुए।
स्वाधीनता के भक्त ऐसे श्रेष्ठ और कहां हुए॥
सुख मान कर बरसों भयंकर सर्व दुखों को सहा।
पर व्रत न छोडा शाह को बस तुर्क ही मुख से कहा।

स्वार्थ ३६९

हे स्वार्थ! तेरी धृष्टताने बन्धु जन शत्रु किये।
दुष्कर्म हैं वे कौन से जोना करे तेरे लिये॥
तेरी परायणता चराचर विश्व में है छारही।
उपकार करना स्वार्थ बिन है बुद्धि यह जाती रही॥

निष्फल भव भ्रमण ३७०

मैं दान तो दीना नहीं और शील भी पाला नहीं।
तप से दमी काया नहीं शुभ भाव भी लाया नहीं॥
यह चार भेदी धर्म में से मैं प्रभो कुछ ना किया।
मेरा भ्रमण भव सागरे निष्फल गया निष्फल गया॥

वैराग्य धर्म औरविद्या का दुरुपयोग ३७१

वैराग्य का जो ढंग है सब विश्व ठगने के किये ।
और धर्म का उपदेश दीना लोक रंजन के लिये ॥
विद्या पढा मैं वाद खातिर और क्या कथनी कहुं ।
साधु बना मैं बहार से दांभिक पने भीतर रहुं ॥

मुख चक्षु और मन का दुरुपयोग ३७२

मैं आस्य तो मेला किया दुर्गुण पराये बोल के ।
नेत्र को निंदित किये पर नारियों को देख के ॥
और चित्त दूषित है किया नित दुष्ट चिंता से विभो ।
कैसे कृतार्थ होऊं भला? इस पाप करके हे प्रभो! ॥

शील धर्म महिमा ३७३

सीता सती सी नारियां हैं शील से पूजी गई ।
हैं द्रौपदी आदी सती भी तो हुई बहुती यहीं ॥
पर शील के कारण जगत त्रिख्यात उनका नाम है ।
संसार में सब ही गुणों का शील होता धाम है ॥

फीस ३७४

पढते सहस्त्रों शिष्य थे पर फीसली जाती नहीं ।
वह उच्च शिक्षा तुच्छ धन पर बेचदी जाती नहीं ॥
दे वस्त्र भोजन भी स्वयं कुलपति पढाते थे उन्हें ।
बस भक्ति से संतुष्ट हो दिन दिन बढाते थे उन्हें ॥

जन साहित्य ३७५

जिसके पृथुल साहित्य की थी औफ बारत में चढी ।
उस जैन दर्शन की दशा है निम्न सबसे है पडी ॥
है आज भी साहित्य किंतु जैनियों का कम नहीं ।
संसार भर मे अन्य जिसके देख पडता सम नहीं ॥

क्रोध ३७६

यह क्रोध भी संसार मे दुख दे रहा सब को अहो ।
प्रशान्त विन किंये क्रोध के शान्ति मिलती है कहो ?
क्रोधाग्नि से जलते हुए को नीर हित कारी नहीं ।
जैसे अभव्यों को जिनेश्वर देव उपकारी नहीं ॥

महा मोह से घेरा हुआ २७७

आयुष्य दिन प्रति घटत जाते पाप बुद्धि नहीं घटे ।
आशा यौवन जाय पर विपयाभिलाषा नहीं हटे ॥
औषध विषे बहु यत्न कीना धर्म मे तो नहीं किया ।
हे प्रभो! महा अधम मोहे दुख बहु मुझको दिया ॥

दीपक लई कूवे पड़ा २७८

आत्मा नहीं परभव नहीं औ पुण्य पाप कुछ भी नहीं ।
मिथ्यात्व की कटु वाणी मैं तो भाव से काने ग्रही ॥
ज्ञान रूपी सूर्य थे प्रभो! आप श्री तो भी अहो ।
दीपक लई कूवे पड़ा धिक्कार है मुझको अहो ॥

अति लोभ दुख दायी २७९

स्पृहयालु होकर आज तक देखा सुखी कोई यहां ?
हैं लोभ से पाते सदा जन कष्ट ही जाते जहां ॥
बिन धर्म सुख मिलता नहीं बहु लोभ से संसार में ।
अति लोभ से डूबा अहो! संभ्रम पारावार में ॥

विद्या की आवश्यकता ३८०

जैसे बिना भानु दिवा दोषा यथा शशि के विना ।
धन के विना स्वामित्व जैसे वृक्ष पल्लव के विना ॥
संसार में संसारियों के घर यथा नारी बिना ।
नहीं शोभता मानव तथा ही सर्वदा विद्या विना ॥

प्रेम ३८१

रहता सदा हम में यहां जो प्रेमका सद्भाव था
संपूर्ण जैन समाज में जो एक ही बरताव था ॥
विपरीत उसके आज है अज्ञान बादल छारहा ।
बस क्या कहें यह काल है बिद्रोह जल बरसा रहा॥

३८२

जो संप रखकर के परस्पर कार्य करते हैं सदा ।
हैं नाम उनके ही यहां विख्यात रहते सर्वदा ॥
जो हैं विरोधी कार्य की सिद्धि कभी पाते नहीं ।
निष्पुण्य प्राणी सौख्य संपत को यथा पाते नहीं ॥

३८३

निज वीर्य का तो लोभ करना यह भयंकर पाप है ।
बिन प्रेम के संसार में नहीं शान्ति किंतु तापहै ॥
हे भाइयो! अब तो परस्पर संप रख कारज करो ।
निज वीर्य को गोपो नहीं आलस्य को तन से हरो ॥

३८४

यदि संप युत पौरुष करो फिर कर दिखाओ क्या नहीं ।
जो आप से अप्राप्त फिर भी वस्तु वो जग में नहीं ॥
जिन वस्तुओं का स्वप्न में भी ध्यान था हम को नहीं ।
पुरुषार्थ से प्रत्यक्ष जन कर के दिखाते हैं यहीं ॥

प्रबोध ३८५

आराम से बैठे हुए यह काल जाता है चला ।
पुरुषार्थ बिन जगमें तुम्हारी नष्ट होती है कला ॥
दिल में विचारो बात यह निज धीरता त्यागो नहीं ।
धारण करो पुरुषार्थ को ऐश्वर्य तो पाओ यहीं ॥

३८६

प्राण क्यों ना जाय चाहे किंतु धर्म न छोड़ना ।
कर्त्तव्य वीरों का यही मुख कातरों से मोड़ना ॥
जैसे कि राजा 'मेघरथ' खग एक की पाली दया ।
धन स्वात्म को अर्पण किया उस सत्व पर कर के मया॥

३८७

प्राण पर के लूट कर निज प्राण की रक्षा करें ।
ऐसे मनुज भव सिन्धु में गोते बहुत खाते फिरें ॥
धन्य है उन मानवों को कोटि पर हित के लिये ।
जीतव्य की लिप्सा न कर निज प्राण जिनने देदिये॥

आदर्श दानी ३८८

सर्वस्व करके दान जो चालीस दिन भूखे रहे ।
अपने अतिथि सत्कार मे फिर भी न जो रूखे रहे ॥
परतृप्ति कर निज तृप्ति मानी रंतिदेव नरेश ने ।
ऐसे अतिथि संतोष कर पैदा किये इस देश ने ॥

३८९

आमिष दिया अपना जिन्होंने श्येन भक्षण के लिये।
जो बिक गये चाण्डाल के घर सत्य रक्षण के लिए॥
देदी जिन्होंने अस्थियां परमार्थहित जानी जहां।
शिवि हरिश्चन्द्र दधीचि से होते रहे दानी कहां?

३९०

सत्पुत्र पूरे थे जिन्होंने तात हित सब कुछ सहा।
भाई भरत से थे जिन्होंने राज्य भी त्यागा अहा॥
जो धीरता के वीरता के प्रौढ तम पालक हुए।
प्रह्लाद ध्रुव कुश लव तथा अभिमन्यु सम बालक हुए॥

३९१

लाखों अपव्यय में उडे पैसा नहीं सद्धर्म मे।
निन्दा उन्हों की हो रही है आज कुत्सित कर्म में॥
वे इंद्रियों के ही वशी हो कर अपव्यय कर रहे।
हैं देखते निज बन्धुओं को हाय भूखे मर रहे॥

३९२

ऐश्वर्य को पाकर यहां सत्कर्म जो करते नहीं ।
धर्मी धराकर नाम ह! जो पाप से डरते नहीं ॥
दिन रात ऐसे जो रहे चल आज कुत्सित पन्थ में ।
वैतर्णी भी तरनी पडेगी किन्तु उनको अन्त में ॥

माता पिता का उपकार और पुत्र का कर्तव्य ३९३

उपकार इतना मात पितु का ऋण चुके कैसे कहो ?
हैं जन्मदाता देह रक्षक प्राणतक देते अहो ?
हैवान सा मैं अज्ञथा संकट विकट टाले जभी ।
सज्ज्ञान का दे दान मुझको भान बतलाया सभी ॥

३९४

जो पुत्र होकर मात पितु को दुःख देता है सदा ।
परहार कर निज हाथसे देते हैं ताको आपदा ॥
कोई पकड बाहिर करें घरमें न आने दे कदा ।
बिन वस्त्रसे ताकों करे ले छीन तासे संपदा ॥

३९५

मां बाप की भी स्वप्न में करता नहीं भक्ती कदा।
जाने नहीं हा! पीडको हो मान के मद में सदा॥
क्या पुत ऐसे को कहें कृमि पेट के जानों सही।
है हीन पत्थर से व ज्यादा काम कुछ आता नहीं॥

३९६

संतान ऐसी स्वप्नमें क्या सौख्य पावेगी कभी।
संतप्त होकर सूर्यसे घट जायगा जलकण तभी॥
ऐसेहि जिनकी आयसे यहां देखलो प्रत्यक्ष भी।
वह नष्ट होगा भ्रष्ट होगा कष्ट पावेगा सभी॥

३९७

नख पंक्ति से गिरि को खने हा! मूढ नर अज्ञान से।
निज दशन से अयखंड का टुकडा करे बेभान से॥
जो धूल लेकर हाथ में रवि सामने फेंके यदा।
सुख कौन पाया है कहो? दुष्काम करनेसे कदा॥

४०४

तल्लीन होकर भक्तिमें कौणिक नृपतिने क्या करा।
निज याद आता था पिता तब शोकमें रहता भरा ॥
खुदराजधानी छोडके जा अन्य नगरी में रहा।
ताँकों सुनंदन वीरने बतलाय आगम में कहा ॥

४०५

सद्भक्तिमें तल्लीन हो भगवान श्री जिनवीरने।
तब क्या किया था गर्भ में भी देख जनिता पीरने ॥
मातेश्वरी पुनि तात जहं तक ही चिरंजीवी रहें।
करना नहीं दीक्षा ग्रहण सुविधानहों मन में गहें ॥

४०६

था तीर्थ सच्चा मात पितु का और था बड़ भ्रात का।
अभ्यागतों को मानते थे पूर्वजों सत् बात का ॥
हैं मानते कुछ तीर्थ अब सासु श्वशुर पुनि सारका।
सबसे अधिक अब होगया है तीर्थ घर की नारका ॥

४०७

संतान कैसे श्रेष्ठ हो संस्कार पहले से भरे ।
आचार था जो मातपितु का पुत्र में वह आ परे ॥
कृषि बीज बोवें खेत में कर साफ तृण आदिक सभी।
फिर देखिये उस खेत में फल चौगुणा होगा तभी ॥

४०८

त्यों ही जनक पुनि मात का सुधरे बिना संतान भी।
कैसे उसी का देखलो प्रत्यक्ष हो उत्थान भी ॥
जो धर्म वर सत्याग्रही उपकार करता हो सदा ।
जब देखलो सन्तान उसकी वीर सम होगी तदा ॥

४०९

जो नहीं पढावे पुत्र को बस शत्रु सम जानो सही ।
क्या हंस गण में काक को सन्मान मिलता है कहीं॥
इस अज्ञता के कारणे नर सैंकडों दर दर फिरे ।
नहि उदर पूरण भर सके तन वस्त्र बिन रहते परे॥

४१०.

सज्ज्ञान बिन भक्ती विनय होता किसे हर्गिज कहीं ?
क्या देश सेवा उन्नति सो हो उसे हर्गिज नहीं ॥
ले शस्त्र तीक्ष्ण हाथ में निज पाद को भेदन करे।
जो नहीं पढावे पुत्र को निज वंश सो छेदन करे ॥

४११.

पादप अनेकों विश्व में सुरवृक्ष पर दुर्लभ मिले।
ऐसेहि पत्थर जाति में को रत्न कहं पे झल हले ॥
त्यों देखलो को कुलविपे शुभवंश दीपक अवतरे।
तामे पुनः वर वीर हो परपीरको जो परहरे ॥

४१२

है ये उचित करना तुम्हें शुभ कार्य अब संतान का।
बिन ज्ञान के होगा नहीं उद्धार हिंदुस्थान का ॥
कुछ दीजिये शिक्षण विविध तजके ममत नित वित्त से।
उत्साह धर अब भाइयो! आलस तजो हित चित्त से॥

(तीन ऋण) प्र० माता पिता का ४१३

श्री जनक जननी श्रेष्ठ गुरु इन तीन के उपकार का।
वदला चुकाना है कठिन ज्यों चालना असि धार का।
उपकार इतना है उसे वर्णन किया जाता नहीं।
पर ऋण चुकाने के लिये बतलाय आगम में कहीं॥

उऋण ४१४

होते दिवाकर ही उदय तब मात पितु के चरण को।
अति विनय पूर्वक भक्ति से जोनित्य लेता शरण को॥
पीयूष मय बोले वचन तन मन रिझावे सर्वदा।
नाना विधी कर भाव से यों प्रेम दरसाता सदा॥

४१५

जो कुछ कहेसो पग भरे नहिं एक डग भी टर सके।
रहता निरंतर पास में नहिं कार्य अनुचित कर सके।
भोजन विविध पकवान करके थाल कंचन में धरे।
भोजन किये बिन मात पितु के जो नहीं भोजन करे॥

४१६

जो थे प्रथम छप्पर उसे अति महिल उन्नत कर दिये।
मौक्तिक कनक भूषण विविध तामें लगा भूषित किये॥
साधन मिले षट् ऋतु तणें सुरभोनसा वह देखिये।
ऐसे भवन अर्पण करे माता पिताओं के लिये॥

४१७

जहं सेज पुष्पों की रचे उत्कृष्ट पट तापे धरे।
निज हाथ से पंखा करे सह उष्णता तन की हरे॥
रजनी व्यतीत तब अर्ध होती भक्ति में उत्कर्ष से।
यों कोटि पूरव तक निरंतर सेव करता हर्ष से॥

४१८

शत पाक आदिक सर्व औषध वा सुगंधित द्रव्य से।
शीतोष्ण गंधोदक लई उवटन करें हित भव्य से॥
ऐसी विभूषा सर्व सज निज स्कंध ले फिरता फिरे।
तोभी उऋण होता कठिन जो विनय इतना नित करे॥

उऋण ४१९

सर्वज्ञ भाषित धर्म जो सागार वा अणगार में ।
सज्ज्ञान से समझाय कर स्थापन करे सुविचार में ॥
सद्देव गुरु पुनि धर्म की श्रद्धान में तसु मन धरे ।
होता उऋण है पुत्र तब हित कार्य इतना जो करे ॥

द्वितीय सेठका ४२०

जो द्रव्य करके हीन ताको सेठ ले रखता सदा ।
संपूर्ण वैभव से करे देकर उसे सुख संपदा ॥
दुष्कर्म के संयोग से हा! सेठ निर्धन होगये ।
परिवार सम्पति द्रव्य आदिक सब दगा जसु देगये ॥

४२१

दे मदद ताको भृत्य आकर लाय घर उत्सव करे ।
परिपूर्ण वैभव से उसे जा सेठ के सन्मुख धरे ॥
करता अहर्निश सेठ की वर भक्ति शुधमन लायके ।
तन धन सभी अर्पण किया तस हुक्म में हर्षायके ॥

४२२

द्वीपद चतुष्पद क्षेत्र आदिक और घर का सार ।
सो कर दिया सब सेठ ही के नाम से व्यवहार है ॥
को सेठ के बिन हुक्म से नहीं एक डग भी भर सके।
करता नहीं अविनय कदा क्षण दृष्टि से नहीं टर सके॥

४२३

हो जिस तरह से ही अनुचर त्योंही वह करता सदा।
जो कुछ चहै सो सेठसे ही दीन हो मांगे तदा ॥
सब काम पुनि व्यवहार में स्वामी कहे त्यों अनुसरे ।
तो भी उऋण होना कठिन जब विनय इतना नित करे॥

४२४

जब शुद्ध गुरु शुध धर्म की पहिचान करवाता तिसे ।
सद्बोध देकर ज्ञान का पाखंड तजवाता जिसे ॥
आगार वा अणगार के युग धर्म में श्रद्धा धरे ।
होता उऋण है भृत्य तब हितकार्य इतना जब करे ॥

तृतीय गुरु से ४२५

कोई मनुज गुरु देव से ले बोध सम्यक्त्वी बने ।
मुनि धर्म को स्वीकार कर गुरु सेव करता तन मने ॥
हो बाल अथवा वृद्ध गुरु पण शिष्य सेवा नित करे ।
खुद गौचरी लाकर दिये तस जोर कर पद कज परे ॥

४२६

व्यावच विनय अति भक्ति कर सुखशांति उपजाता जिसे
निर्देश कर गुरु बैन का सन्मुख रहे जो निश दिसे ॥
आशातना टाले सभी नित न्याय पथपे पग धरे ।
होता नहीं प्रत्यनीक कब जिन आण समवो अनुसरे ॥

४२७

यों क्रोड़ पूरवतक करे जो सेव श्री गुरुदेव की ।
अनशन करी अंतिम समय पदवी लही सुरदेव की ॥
फिर आय धर्माचार्य की भक्ति करें हित जान के ।
कुविदेशसे गुरुको धरे सुविदेशमें हित आनके ॥

४२८

जब रण्यमें पथ भूल के रहते गुरु घबराय के ।
पशु व्याघ्र आदिक जीवसे चिंता रही चित छायके ।
तब शीघ्रही उस रण्यमें से लायकर पुरमें धरे ।
ऐसे निरंतर देवगुरुकी गुप्त रहि सेवा करे ॥

४२९

आतंक आदिक रोग षोडस वपु विषे आकर भये ।
व्याकुल हुए गुरु मनविषे अति भीम व्याधी के छये ॥
औषध यथा उपचार कर सहु वेदना छिनमें हरे ।
तोभी उऋण होना कठिन जब विनय इतना नित करे ॥

उऋण ४३०

सज्जैन पथ तजके गुरू मिथ्यात्व म श्रद्धा लई ।
अरिहंतसे तज देवको जड देवकी श्रद्धा भई ॥
तव शिष्य तज मिथ्यात्व ताको जैन मारग में धरे ।
होता उरुण है शिष्य तब हितकार्य इतना जब करे ॥

४३१

जिनराज श्री महावीरने कहा अंग तीजे में वरन ।
दे मदद तवही धर्म का इन तीन से होता उऋण ॥
अत्यल्प धी अनुसार यों 'मुनिसूर्य' ने वर्णन कथा ।
श्रीनंद सूरि शरणले सब दूर हो पलमें व्यथा ॥

धर्म ४३२

है धर्म ही मंगल परम तिहुं लोक में सुख धामका।
रविकान्त से भी है अधिक अभिराम है सुविरामका ॥
मन मोद धर शुभ भावसे जिन धर्म में श्रद्धा धरे ।
देवेन्द्र भूपति आदि ताके जोर कर पद कज परे ॥

४३३

रक्षा करे जग जंतु की सब पुंज अघ पल में हरे ।
नव निद्ध संपद हो अमित पुनि वेग शिव वनिता वरे॥
संकट विकट नावे निकट दुख रोग भय दुरे टरे ।
पावे अखिल आनन्द जो नर धर्म को धारण करे ॥

४३४

आराम नन्दन धर्म है प्रत्यक्ष पुनि सुरतरु यही।
दृत चित्त से की सेवना जिन भावना इच्छित लही।
धर लालसा अति तीव्र जिसने पाप मल संचय किये,
होता लषित यह शीघ्र ही जब शर्ण जिन वृषकी लिये॥

४३५

जिनराज के अनुयाई बन जो धर्म हिंसा में गिने।
तलवार ले निज हाथ में खुद पैर पै मूरख हने॥
सूझे नहीं अंधे बने अज्ञान के अविचार से।
रिपु मानता है मित्रवत् सो डूबता मझधार में॥

४३६

श्वव्याघ्र समये अधम हिंसा त्यागता ना मूढ है।
रति मानता समझे नहीं मूरख रहा आरूढ है॥
यदि चन्द्र से अग्नि झरे सूरज करे अंधकार भी।
पर हो सके हर्गिज नहि हा! धर्म हिंसा में कभी॥

४३७

कीरत अचल उनकी रहे नहिं त्यागता सद्धर्म है ।
जव आफतें आती तभी दृढ धारता सत्कर्म है ॥
रण भूमि में है वीर को इक शस्त्र का आधार है ।
पड़ते हुए भव सिन्धु मे त्यों धर्म ही श्रयकार है ॥

४३८

लक्ष्मी तथा परिवार किसके साथ जाता है नहीं ।
तारक अधोगति प्राणियों को धर्म सच्चा है यही ॥
है वीर नर के ही लिये यह धर्म श्री जिनराज का ।
रणभूमि में को जीतता ले साथ कायर साज का ॥

४३९

साफल्य है जीवन करे जो धर्म की रक्षा अगर ।
यदि मरगया तोभी उसीका नाम रहता है अमर ॥
देखे न परके दोष को उपकार की धी हो सदा ।
मुनि धर्म तप धारन करे सो ले अटल सुख संपदा ॥

कलियुगीय नारी ४४०

आलस्य निद्रा एश अशरत में हमेशा खुश रहै।
कहती हमें फुरशत नहीं जो धर्म करने का कहैं॥
दो चार घंटे बात करने से नहीं थकती कदा।
व्याख्यान में भी विकथा का ठाट मचता है सदा।

४४१

शृंगार करती देह का ओर गेह में भूखों मरे।
पति को बनाया दास तो फिर वो विचारा क्या करे
नूतन वसन बारीक मेरे पहिरने को चाहिये।
जेवर जड़ाकर आज हीं बस श्याम को ले आईये।

४४२

सास का हो नास ऐसी भावना मन भावती।
जेठ देवर की दया दिल में जरा नहीं लावती॥
सुसरा सगा घर के कुटुम्बी से तो रखती खार है।
अन्य जाती की सहेलि से लगाया प्यार है॥

४४३

अफसोस है इस बात का जिस पे मही का भार है।
माता हमारी का हुआ कैसा बुरा आचार है ॥
मात मेरी बात को अब ध्यान में धर लीजिये ।
अरु देश का उद्धार हो बस काम ऐसा कीजिये ॥

ज्ञानी के २० लक्षण ४४४

मानी नहीं दंभी नहीं हिंसक नहीं दृढ वीर हो ।
श्रमी आर्जव शौच इंद्रि दमन मन का धीर हो ॥
आचार्य की सेवा करे ममता नहीं घर बार पर ।
तत्व का ज्ञाता प्रभू का भक्त समझो ज्ञानी नर ।

४४५

पुत्र दारा में नहीं आसक्त नहीं अहंकार है ।
जन्म मृत्यु रोग का समझे वपु आगार है ॥
भीड में प्रीति नहीं एकान्त आतम लीन है ।
अनुकूल और प्रतिकूल में समभाव के आधीन है ॥

संतगुणगान ४४६

तनमें नहीं आसक्ति है मनमें नहीं है कामना।
चिन्ता नहीं है चित्तमें नहीं चाहता है नामना ॥
विश्वेशकी ली है शरण नहीं अन्य कुछ भी जानता।
सोही विवेकी धन्य है शिवतत्व को पहिचानता ॥

४४७

तड़का हुआ दिन ढलगया संध्या हुई फिर रात है।
जाडा गया गर्मी गई फिर आगई बरसात है ॥
दिन चार की इस चांदनी में मन नहीं भटकात है।
जो संत सबका पूज्य सबकी चाहता कुशलात है॥

४४८

जिस रोज बालक जन्मता यम घर उसी दिन आय है।
सिरपर खड़ा रहता सदा ही साथ लेकर जाय है ॥
यम दीखता सिर पर खडा धोखा नहीं सो खाय है।
संसार से मुख मोडकर सत् ब्रह्म निश दिन ध्याय है॥

४४९

देता सभी को है अभय नहीं भय किसी से खाय है।
नहि दुःख देता अन्य को नहिं आप ही दुख पाय है॥
देखो तमाशा विश्व का नहि बोझ पीठ उठाय है।
ऐसा विवेकी अन्य तारे आप भी तर जाय है॥

४५०

गप्पे वृथा नहिं मारता हित मित मधुर सच बोलता।
कमती नहीं बढती नहीं पूरा बराबर तोलता॥
हृद्ग्रन्थि अपनी काटता है अन्य की भी खोलता।
सच्चा वही है संत क्या बैठा हुआ क्या डोलता॥

४५१

सब देवियां माता बहिन, या बेटियां है जानता।
लक्ष्मी भवानी शारदा जगदम्बिका सम मानता॥
मन निर्विकारी ब्रह्मचारी ब्रह्म केवल ध्यावता।
निष्काम आत्माराम पूरा संत सो कहलावता॥

४५२

नहिं वस्त्र कोई गात्र के नहिं पात्र कोई हाथ है।
निर्भय अकेला बेधडक रखता नहीं कोई साथ है॥
कुटिया बनाता है नहीं कूटस्थ में नित वास है।
हैविश्वभर का पूज्य सो नहीं आश का जो दास है॥

४५३

ऊपर भले मैला रहे भीतर न किंचित् मैल है।
सन्मार्ग चलता है स्वयं सच्ची बताता गैल है॥
सब विश्व मांही रम रहा है देखता सब खेल है।
रखता सभी से मेल फिर भी नहिं किसी से मेल है॥

४५४

है आप ही इस पार में है आप ही उस पार में।
संसार में है दीखता पर चित्त है सुख सार में॥
व्यवहार करता है सभी फंसता नहीं व्यवहार में।
सो संत है जग मान्य देखे सार ही निस्सार में॥

४५५

दीन्हा मिटा है आप कों संतुष्ट अपने आप में ।
निर्माल्य कूडा त्याग कर शिव देखता है आप में ॥
अनुरक्त अपने आप मे निष्काम में निष्पाप मे ।
आसक्त अपने आप मे बेतोलमे बेमाप में ॥

४५६

उपवीत षट्सम्पत्ति का लम्बी शिखा है ज्ञान की ।
तुम्बी परम वैराग्य की झोली अखंडित ध्यान की ॥
कर दण्ड है सन्तोष का कंथा अचल विज्ञान की ।
सो संत भोला! पूज यदि है चाह निज कल्याण की ॥

युवानी विकार ४५७

चक्रेल थई चित भटकतुं घडिए कंईना गोठतुं ।
हरि भजन के परमार्थ मां पलवार पण ना चोटतुं ॥
निर्भय अने निश्चल थई पर नार मां भमतुं फरे ।
फक, फक, युवानी आंधली तूं विषय ने ह्वालो करे।

४५८

निज लाज ह्वाली ना गणे निज काज नें पण नव गणे।
निज ज्ञात ने पण नव गणे निज नातने पण नव गणे॥
निज पाप थी पण नव डरे जग नाथ थी पण नव डरे।
फक! फक युवानी आंधली तूं विषयने ह्वालो करे ॥

४५९

निज कुटुम्बी के निज सगानी नार ने पण नव जुवे ।
पत्नी भले हो पुत्रनी गुरु पत्नि पण नव छुवे ॥
निज पुत्रनी पत्नी थकी हेते अनीति आदरे ।
फक! फक! युवानी आंधली तूं विषयने ह्वालो करे ॥

४६०

विधवा भले पण रूपवंती होय तो तूं च्हाय छे ।
क्यारे मले? क्यारे मले? मलवा अति अकुलाय छे ॥
विधवा गमन थी पाप छे ते पाप थी पण नव डरे ।
फक फक युवानी आंधली तूं विषयने ह्वालो करे ॥

४६१

उंच नींच कंई परखायना भुंडूं भलूं जोवाय नां ।
गद्धा पचीशीमां पडी कंई भेद अवलोकाय नां ॥
मन माकडुं थइ श्वान नी माफक बधे फरतुं फरे ।
फक फक युवानी आंधली तूं विषयने व्हालो करे ॥

४६२

बालक पणे भगवंतने नर हेत थी भजतो हतो ।
व्यभिचार मां समझे नहीं सौ पाप ने तजतो हतो ॥
थारों असर ज्यां थाय के ते सौ परे पाणी करे ।
फक फक युवानी आंधली तूं विषयने व्हालो करे ॥

पुत्र कौन? ४६३

मां बाप जो करता हुकुम तो हाथ जोडी सांभले ।
पछी प्रीत थी ने चित्त थी आज्ञा चढावे शीशले ॥
मां बाप ना हुकमों बजावे हृदय थी ते दीकरा ।
बाकी बीजा भांगेल काचा हांडला ना ठीकरा ॥

जनम्यो वृथा झख मारवा ४६४

जो ईशने समरे नहीं जनम्यो वृथा झख मारवा ।
परमार्थ ने पोष्यो नहीं जीव्यो जगे झख मारवा ॥
खाधुं पीधुं हां खंत थी जाडा थया पाडा समा ।
पर पिंडने पोष्यो नहीं जाडा थया झख मारवा ॥

४६५

मोजों हजारों मारता गाडी अने घोडे चढी ।
सत्कर्म कंई कीधुं नहीं मोजों करे झख मारवा ॥
राजा थया के देशना पीडा प्रजा ने आपता ।
रैयत सदा रडतो रहे राजा थया झख मारवा ॥

४६६

सुख मेळवे रैयत सदा ना राज्य ने रहती वफा ।
टटे बखेडे जो करे रहे राज्य मां झख मारवा ॥
बावा अने योगी बनी माया मुकी ना वेगळी ।
ढोंगी थइ जग भ्रमता बावा बने झख मारवा ॥

४६७

विद्या भणी सीख्या के पंडित अने ज्ञानी बन्या ।
ना ज्ञान आप्युं अवरने ज्ञानी थया झख मारवा ॥
नखराकरे छे नव नवा निज नाथ ने संतापती ।
संतोषती ना स्वामीने नखरा करे झख मारवा ॥

४६८

अति कष्ट थी उछेरीने डाह्या बनाव्या दीकरा ।
मां बाप ने मानें नहीं पेटे पड्या झख मारवा ॥
जो पूरतुं आपे नहीं जालिम जुलम थी काम ले ।
ए शेठिया के शट्ठ छे! जुलमों करे झख मारवा ॥

आवी दया ने शुं करे ? ४६९

निर्दोष पक्षी पाडवा गोली छुटी बंदूक थी ।
पोकार पाडी ने पड्यूं पक्षी विचारो वृक्ष थी ॥
निरखी तफडतुं तेहने हणनारनुं अन्तर बले ।
पाछल पछाडे पूंछडुं आवी दयाने शुंकरे? ॥

४७०

अरजी सुणी पण मेघजी आव्या न चौमासाविषे ।
दुनिया दुखी दुष्काल थी जन भूख थी मरता दिसे॥
पण माघ मासे मेघ जी लेवे दया अवनी परे ।
पाछल पछाडे पूंछडुं आवी दयाने शुंकरे ॥

४७१

पैसो घणों प्यारो गणी बाला विवाही वृद्ध ने ।
बाला पणे विधवा थतां आवी दया दुर्बुद्ध ने ॥
दुख देखतां दिकरी तणुरे आंख आंसू थी भरे ।
पाछल पछाडे पूंछडुं आवी दयाने शुंकरे ॥

४७२

रे ! नवीन वधूना बोध थी मैयत प्रियाना पुत्र ने ।
बाला पणेतर छोडियो समज्यो नहीं घर सूत्र ने ॥
पत्तो मल्यो ना पुत्र नो मन मां मुंझाई ने मरे ।
पाछल पछाडे पूंछडुं आवी दयाने शुंकरे ॥

४७३

धनवान हुं पद्मां रह्यो आप्युं नहीं कंगाल ने ।
दुर्बल हतो रे भूख थी पृथ्वी पडयो तत्काल ते ॥
पडतां मरण पाम्यो दया धनवान ना दिलमांठरे ।
पाछल पछाडे पूंछडुं आवी दयाने शुंकरे ॥

४७४

कब्जे करी किल्लो तलक शाहे चलावी शहेरमां ।
हो बाल वृद्ध युवान पण सौ को कपाया केरमां ॥
पोकार मरता नो सुणी अफसोस करतो शाहरे ।
पाछल पछाडे पूंछडुं आवी दया ने शुंकरे ॥

४७५

शर सांधिने मृग मारवारे पारधी पूठो पडयो ।
शर वागतां धरणी ढल्यो पोकार मृगली ने कर्यो ॥
मृगली मरी सिर पटकीने घातक दयाथी थरथरे ।
पाछल पछाडे पूंछडुं आवी दया ने शुंकरे ॥

४७६

बोटो डुबावा आगनी दरिये कर्युं तोफानेर ।
जोडा विखूटा बहु कर्या लीधा कई ना प्राणरे ॥
पछताइते पूरो पछीरें शान्त थातां शुं वले ।
पाछल पछाडे पूंछडुं आवी दया ने शुं करे ॥

४७७

पहला हृदय कंपे नहीं एवी दया शुं कामनी ।
मृत्युं थतां आणे मयारे ए मया शुं कामनी ॥
शंकर कहे छे शीष छेदी चरण बांधे शुं वले ।
पाछल पछाडे पूंछडुं आवी दया ने शुं करे ॥

काष्ठ की माला ४७८

आकाष्ठ नी माला अरे तूं फेरवीने शुंकरे ।
किरतार ना अन्तर विषे हस्ते धरी तूं शुंकरे ॥
नित्य न्हाय निर्मल नीर थी सरिता सरोवर मां जई ।
पण मेलना मननो सख्यो जल वापरी तूं शुंकरे ॥

४७९

टीला अने टपका करी छे भस्म सौ अंगे भरे ।
पण शरीर तो शैतान छे तूं भस्म रमी ने शुंकरे ॥
वस राम राम पोकारतो पण प्रेम ना प्रभु मां अरे ।
काम तुझ हिरदे रहे प्रभु छेतरी तूं शुंकरे ॥

४८०

रे देव दर्शन माटे तूं फरतो फरे सौ मंदिरे ।
आकीन ना अन्तर विषे फोकट फरी तूं शुंकरे ॥
तूं नेल काढी ने सदा बस ध्यान धरतो ढोंग थी ।
पण चित्त तुझ चंचल रहे फतवा करी तूं शुंकरे ॥

४८१

धारण कर्या छे श्वेतवस्त्रो श्वेतदिल कीधुं नहीं ।
देखावो छो सुत की सदा धोला धरी तूं शुंकरे ॥
एकादशी ने अन्य कई उपवास करतो कष्ट थी ।
पण भ्रष्ट छे तुज भावना भूखे मरी तूं शुंकरे ॥

वचन पालवा विषे ४८२

बोली वचन पाले नहीं ने काल तोडे आपनो।
विश्वास को तेनो करे सारो भरूसो सापनो॥
होवे खरो कुलवान ते निज टेकने छोडे नहीं।
शिर जाय तो पण शुंथयुं दई काल ने तोडे नहीं॥

४८३

सरतो करे छे स्नेह थी आवे समय जो हारवा।
बे बोल थेये बायला सरतो करे झख मारवा॥
आपे शिखामण अन्य ने पण बोल बोले आपनो।
ते जिंदगी मां धूल छे जो काल तोडे बापनो॥

४८४

आप्युं वचन ते पालवा हरिश्चन्द्र दुःख पाम्या खरे।
विक्रय करी सुत नारनो पोते रया शूदर घरे॥
आप्युं वचन निभाववा बलिराय पाताले वस्या।
पांडव गया वनवास पण ते सत्य थी डगना खस्या॥

४८५

आप्युं वचन ते पालवा ने प्राण छोड्यो दशरथे ।
गुणों गवाया सृष्टि मां कवियो कविता मां कथे ॥
वाणी वदे शास्त्रो सदा जो बोल बोल्यो पालशे ।
किरतार करशे सहाय जो निज टेकने सम्भालशे ॥

संसार मे सम्पूर्ण सुखी कोई नहीं ४८६

धन सम्पदा मां कम नथी भंडारतो भरपूर छे ।
किरती तणा किल्लो चण्यो व्याधी थकी तन दूर छे ॥
पण संतती नुं सुख नथी चितडुं सदा तेथी बले ।
आ सार विण संसार मां दुःख मुक्त जन को नव मले॥

४८७

सुख पाल घोडा गाडी ने चाकर तणो टोटो नथी ।
व्हाला सगानो स्नेह छे प्रिय नारनो जोटो नथी ॥
पण व्याधि तन थी ना खसे ना वैद्य घरमां थी टले।
आ सार विण संसार मां दुख मुक्त जन को नव मले॥

४८८

विद्वान ने गुणवान छे युवान के कुळवान छे।
छे संततीनुं सुख अरु काया सदा बलवान छे॥
पण पास कौडी नवमले चगदाय परना रण तले।
आ सार विण संसार मां दु ख मुक्त जनको नव मले॥

४८९

राजा महाराजा थया मुलको हजारों मेळव्या।
पैसा ग्रही पर राज्य ना भण्डार भेगा मेळव्या॥
पण नार कुलटा निवडिया थी गर्व राजा नो गले।
आ सार विण संसार मां दु ख मुक्त जन को नवमले॥

४९०

केने कुटुम्बनुं दु ख छे कैना शरीरे रोग छे।
धन सन्तति विण कै दु खी व्हाला मुआनो शोक छे॥
ए रीत कोना शिर परे संपूर्ण सुख थी नव टले।
आ सार विण संसार मां दु ख मुक्त जन को नवमले॥

टोलक बन्धुने सविनय विनन्ती ४९१

औदीच टोलकियां तणां सन्तान छो शाणा तमे ।
तुम ज्ञाति नो सेवक विनय ने स्नेह थी तमने नमे ॥
लघु अर्ज आ मम एक छे दिलमां धरो ते द्विजवरो ।
हुं प्रेम थी पुछुं तमों ने कान्फरन्सो कां भरो ॥

४९२

जो आ सभाना कायदाते क्यांय पण पोषाय ना ।
सत ने गम्युं सौ को करे प्रतिबन्ध ते नो थायना ॥
दुख कर कुंवारा छे घणा जे बन्ध कां ना ते करो ।
हुं प्रेम थी पुछुं तमों ने कान्फरन्सो कां भरो ॥

४९३

हांसी करे सौ होंशथी भूदेव भेगा थाय छे ।
भाषण नकामा भरडता हो हा करी वेराय छे ॥
ना न्यात नुं तोले कशुं डाह्या घणा छे द्विजवरो ।
हुं प्रेम थी पुछुं तमों ने कान्फरन्सो कां भरो ॥

५००

वलि लग्न-मां छे खर्च म्होटा ते वली कैं थायना।
घर वाळी ने तीरथ करो एं आंख थी जोवायना ॥
घर मा मले ना अन्न ने पहेरी पितांबर कां फरो।
हुं प्रेम थी पुछूं तमोंने कान्फरन्सों कां भरो ॥

कर्म देव ५०१

वलि चाकरी अति आकरी खरी खंतनी मेतो करी।
कीधी खुशामद शेठनी के आपदा ने ले हरी ॥
पण पेट पूर्तुं नव मल्यो ज्यां नसीब आवीने नडयुं।
रे! रे! दयालु देव रहे मम कर्म कां एवुं घडयुं ॥

५०२

वस देह थी पण सुख नहीं व्याधी हजारों आवती।
ना एक दिन राजी रहुं चिन्ता अनी चितमां थती ॥
काल्हेहत्तो जो तावतो आजे वलि माथु चडयुं।
रे! रे! दयालु देव रहें मम कर्म कां एवुं घडयुं ॥

५०३

मोजों हजारों मारता जाता दिठा के वाडिए ।
खाता हता पकवानने फरता दिठा के गाडिए ॥
ना पूरतुं खावा मले जोडा बिनानु आथडुं ।
रे रे! दयालु देव त्हें मम कर्म कां एवुं घडयुं ॥

५०४

कैनुं दुखे नित पेठलो वैद्यो नी दोडादोड छे ।
रिबाऊं दरदे घणो संभालनारुं कोणछे ॥
नाखूंनिसासाहुं घणाके पाप को भवनुं नडयुं ।
रे रे! दयालु देव त्हें मम कर्म कां एवुं घडयुं ॥

५०५

कैमा पराणे मिल आवा जन हजारों जायछे ।
हुं मिल शोधुं एक पण ते दाद क्यां लेवाय छे ॥
शुं जग तनो ए नियम के पडता उपर सौ को पडयुं॥
रे रे! दयालु देव त्हें मम कर्म कां एवुं घडयुं ॥

भुंगल विनानी भवाई ५०६

हे आर्य बन्धुओ! तमे जोया तमाशा छे घणा।
नाटक सिनेमा सर्कसो राखी हशेः के मणा॥
भाली भवाई पण हशे नवुं के निरखवा आवजो।
भुंगल विनानी आ भवाई भाई जोवा आवजो॥

५०७

आलग्न मंडप मां जुओ विधियुक्त मंत्र भणायछे।
वरवहू वय वर्षना शुं लग्न योग्य गणाय छे॥
वर तो उंघे कन्यारडे ए अश्रु लोवा आवजो।
भुंगल विनानी आभवाई भाई जोवा आवजो॥

५०८

आ जाय वरघोडो जुओ बुड्ढा बबुचकजी तणो।
वर वर्ष पञ्चोतेरना पण मोह अन्तर मां घणो॥
कन्या वर्या दश वर्ष नी फुल पान लेवा आवजो।
भुंगल विनानी आभवाई भाई जोवा आवजो॥

५०९

आ वारमानी न्यात छे पुले पितानुं ऋण भर्युं ।
घर वार सौ गिरवे मुकी पकवाननुं भोजन कर्युं ॥
पति गयुं पती रडे पकवान जमवा आवजो ।
भुंगल विनानी आभवाई भाई जोवा आवजो ॥

५१०

आ दीकरी ना दोकडा लेनार देवी दास छे ।
कन्या कुवा मां नांखवा नो नीच धंधो खास छे ॥
कन्या दलाली पण करे तेने खटावा आवजो ।
भुंगल विनानी आभवाई भाइ जोवा आवजो ॥

साधुता ने शुं सज्यो ५११

परहरी धन धान्य ऋद्धि ग्रहण कीधा योगने ।
इन्द्राणि सम नारी तजीने सहु वस्या छे भोगने ॥
शय्या तजी गादी तणी वलि मिष्ट भोजन ने तज्यो ।
पर क्रोध ईर्षा ना तजी तो साधुता ने शुं सज्यो ॥

५१८

सम्बन्ध सांचो होय पण पैसा बिना काचो अरे ।
आ ठाठ माठ नजर वडे देखाय ते झूठो ठरे ॥
लूटे लफंगा लोक पर धन धान्य ने पर दार ने ।
ए कारणे धिक्कार छे निस्सार आ संसार ने ॥

५१९

आ हूं अने आ आपणुं एवुं ममत्व टले नहीं ।
आ जन्मनी जडता तणी पण गांठ लेश गले नहीं ॥
छे दुःख सरखा सर्व ने नौकर अने सरदार ने ।
ए कारणे धिक्कार छे निस्सार आ संसार ने ॥

५२०

पूर्वे करेला कर्म थी वहु जन्तुओ जन्मे मरे ।
आधी उपाधी व्याधियो आवी पडी पीड्या करे ॥
मरवुं अरे मेली सगां सम्बन्धि ने घरबार ने ।
ए कारणे धिक्कार छे निस्सार आ संसार ने ।

५२१

सुख मां सहाय करे बधा पण दूर दुःखे जाय छे ।
पाशेरना पण पेट माटे कपट कूडा थाय छे ॥
आव्यो न मेले काल पण दुखियां अने दरबार ने ।
ए कारणे धिक्कार छे निस्सार आ संसार ने ॥

५२२

कोना कुशब्दने शांभलो नर तू न देखे नयनथी ।
टाढुं अने ऊनुं सदा सरखुं गण्यां मां भय नथी ॥
जेने मने सरखा सदैव कदन्न ने कंसार छे ।
एवा सदाचारी पुरुष ने सुखद आ संसार छे ॥

५२३

जे जगतनी जंजाल मां रति मात्र पण रीझे नहीं ।
जे भामिनि नी भमर थी भूलाई ने भीजे नहीं ॥
सुख रूप सर्व सुगन्ध जेने सर्वदा निस्सार छे ।
एवा सदाचारी पुरुष ने सुखद आ संसार छे ॥

५२४

विद्या वडे विनये विवेके विश्वमां वखणाय छे ।
सहुने सुखी देखी हृदय मां रोज राजी थाय छे ॥
जेने भरा धन धामना वैभव विषे धिक्कार छे ।
एवा सदाचारी पुरुष ने सुखद आ संसार छे ॥

५२५

आशा अने तृष्णा तजी सन्तोष राखी ने रहे ।
निज धर्मनी शुभ धोंसरी जो कोड थी कांधे रहे ॥
उपकार करवा अन्यने जेनो वडो वेपार छे ।
एवा सदाचारी पुरुष ने सुखद आ संसार छे ॥

५२६

चिंता चिता मां चित्त जेनुं लेश पण तपतुं नथी ।
पर धन अने पर धाम जेने जन्म थी खपतुं नथी ॥
अति दुष्ट दुर्गुण दोष थी जो हृदय मां डरनार छे ।
एवा सदाचारी पुरुष ने सुखद आ संसार छे ॥

५२७

भय होय भारे तोय पण जीभेन भूंडुं भाखता ।
चंचळ थतां पण चित्त ने वैराग्य थी वश राखता ॥
कल्याण कारक कामने जे करवडे करनार छे ।
एवा सदाचारी पुरुष ने सुखद आ संसार छे ॥
गइ पल न पाछी सांपडे ए काळ नो निश्चय खरो ५२८
निद्रा अने आलस तजी जोता नथी कां जागने ।
संपाइ जाशो क्या कहों यमदूत आगल भागने ॥
निर्भय थवा मन होय तो कल्याणनुं साधन करो ।
गइ पल न पाछी सांपडे ए कालनो निश्चय खरो ॥

५२९

महलो बगीचा बंगला ना ठाठ नहीं केई कामना ।
उपकार ना कामो करीने अचल राखो नाम ना ॥
संसार ना विषयो बडा विषधर गणी तेथी डरो ।
गइ पल न पाछी सांपडे ए कालनो निश्चय खरो ॥

५३०

धन धामने धरणी तणी मन मां करो छो कामना।
कोई दिखाया गुण न अन्तर मां रहेला रामना ॥
माया तणा मद थी मदी शुं फांकडा थइने फरो ?
गइ पलन पाछी सांपडे ए काल नो निश्चय खरो ॥

५३१

बालक पणुं रमतें गयुं ने तरुणता तरुणी विषे।
वृद्धत्व आव्युं आगले आवेन ते अंतर विषे॥
सारुं थयुं जीव्या हजी तो श्रेष्ठ पंथे संचरो।
गइ पल न पाछी सांपडे ए काल नो निश्चय खरो ॥

जन जाण यौवन जाय छे धन जाय छे तन जाय छे ५३२

दीधे करोडों दाम मानव देह आ मलतो नथी।
तो पण वृथा केवाय जो हरि नाम तूं लेतो नथी ॥
राजी रहे अन्तर विषे शुं राम रटतां थाय छे।
जन जाण यौवन जाय छे धन जाय छे तन जाय छे ॥

५३३

तारुण्य जल थी सर भर्यो सघलुं सदा जानार छे।
उपकार करवो अन्य नो संसार नो ए सार छे॥
बहु राग रंग नाना विषय ना गीत तूं शुं गाय छे।
जन जाण यौवन जाय छे धन जाय छे तन जाय छे॥
जाण्या न जो जगदीश तो मानव थया पण शुं थयुं ५३४
देखी अवरना उदय ने आवी गई ईर्षा अती।
शास्त्रो पुराणो निरखवा आनन्द पामी नहीं मती॥
दर्शन कर्या नहीं साधुना नयनो मल्या तों शुं थयुं।
जाण्या न जो जगदीश तो मानव थया पण शुं थयुं॥

५३५

सारूं श्रवण कीधुं नहीं शिक्षा न सारी सांभली।
चाडी अने चुगलाई नी वातोवली लागी गली॥
नहिं दाद दीन तणी सुणी कर्णो मल्या तो शुंथयुं।
जाण्या न जो जगदीश तो मानव थया पण शुंथयुं॥

५३६

काढ्या अती कडवा कलेजा कांपनारा केणने ।
नकह्या सद्बोध कारक विनय वाला वेणने ॥
नहिं नाम लीधुं रामनुं जिह्वा जडीतो शुंथयुं ।
जाण्या न जो जगदीश तो मानव थया पण शुंथयुं ॥

५३७

सेवा न संत तणी करी सद्बोध लेश लख्या नहीं ।
कल्याण कारक अवर कोई क्रिया कदापि थई नहीं ॥
नहिं दीन ने दीधुं कंई हाथो मल्यातो शुंथयु ?
जाण्यान जो जगदीश तो मानव थया पण शुंथयुं ॥

५३८

सत्पुरुष ना दर्शन नहीं करवा गया कोडे कदी ।
आप्युंन मान अनेक ने मोटाई ना मदमां मदी ॥
न कर्या कदी तीर्थाटनो पग पामवा थी शुंथयुं ।
जाण्या न जो जगदीश तो मानव थयापण शुंथयुं ॥

५३९

न नमन कर्युं गुरु जन तणा चरणारविन्द विषे पडी।
उपकार थी बांधी नहीं जय शब्द नी पण पाघडी॥
ऋण एक पण नहिं उतारियो माथुं मल्युं तो शुंथयुं।
जाण्यान जो जगदीश तो मानव थया पण शुंथयुं॥

कल्याण समजाय नहिं तो वैभव निष्फल छे ५४०

बैठा बगीचा बंगला मां मोज शोख सदा करी।
भाषण कर्या भरजोर थी भारे सभा मंडल भरी॥
मोटा जनो मां मानने कदि कोई रीते मेळव्युं।
जाण्युं न जो कल्याण तो ते सर्वथा निष्फल गयुं॥

५४१

धन धाम ने धरणी मल्यां द्रव्ये मल्यां भण्डार छे।
हे कोई हाजर एम के त्यां एक बे तैयार छे॥
रागे अने रंगे हृदय आनन्द मांज रची रह्युं।
जाण्युं न जो कल्याण तो ते सर्वथा निष्फल गयुं॥

५४२

पोढ्या पलंगे पेठपर कर फेरवी आनन्द मां ।
आवी न आधी व्याधि वलि उपाधिओ आ अंगमां ॥
निजना विचारे जन्मवुं सन्तोष कारक मानव्युं ।
जाण्युं न जो कल्याण तो ते सर्वथा निष्फल गयुं ॥
ते नारी नो संसार मां सुखरूप आ अवतार छे ५४३
आलसी नहि ऊंघजेने नित्य वहेलुं जागती ।
निर्मल थई गुरु जन अने पतिने पगे पण लागती ।
सन्मान थी सहुने जमाडी जे पछी जमनार छे ।
ते नारी नो संसार मां सुख रूप आ अवतार छे ॥

५४४

मन बचन वलि कर्म थी सेवा करे निज नाथ नी ।
विद्या विवेक विचार थी संभाल लेता साथ नी ॥
जेने सदा संतोष कारक एक निज घरबार छे ।
ते नारी नो संसार मां सुखरूप आ अवतार छे ॥

५४५

आज्ञा न लोपे नाथ नी कोपे नहीं जो कोइने ।
चाले सदाचरणे सुखे जे सूक्ष्म नजरे जोइने ॥
वांधोवगोणा वाद ने जे जन्म थी तज नार छे ।
ते नारी नो संसार मां सुखरूप आ अवतार छे ॥

जीवन जरा आपी शके ५४६

छे काल ने आधीन सर्वे ते कशुं नहीं जाणता ।
लक्ष्मी तणा वैभव वडे अत्यन्त सुख ने मानता ॥
एते बिचारा शुंकरे चमचा वडे च्हा पी शके ।
पण कोई शुं संसार मां जीवन जरा आपी शके ॥

५४७

तनमन अने वाणी वडे पीडे अहर्निश प्राणी ने ।
संतोष माने सर्वदा संसार ना सुख मामी ने ॥
झाझूं करे तो सर्प नी फण पग वते दाबी शके ।
पण कोई शुं संसार मां जीवन जरा आपी शके ॥

५४८

परमार्थ काजे पिंड पोतानो खुवे पलवारमां ।
एवा महा शूरा जनो दीठा घणा संसार मां ॥
साहस करेतो हेत थी हाथे हलाहल पी शके ।
पण कोई शुं संसार मां जीवन जरा आपी शके ॥

५४९

आजे बनावे आग गाडी इंजिनो थी ओपती ।
बहुए बनावे आग बोटो बुद्धि शाली जे अती ॥
कदि अंतरीक्ष विषे विमानो वेगथी चलवी शके ।
पण कोई शुं संसार मां जीवन जरा आपी शके ॥

५५०

बहु बीजलीना तार टेलीफोन ने बांधी शके ।
छेटे रहेला देशना संबन्धने सांधी शके ॥
उद्योग करतां कोई दिन बरसाद को अटकी शके ।
पण कोई शुं संसार मां जीवन जरा आपी शके ॥

५५१

भावे भणे विद्या भली लक्ष्मी कदी लावे घणी ।
शूरातने थी यत्न करतां थाय धरती ना धणी ॥
कदि दुःख सघला दिवस ना करुणा करी कापी शके ।
पण कोइ शुं संसार मां जीवन जरा आपी शके ॥

संसार मां सुख नथी ५५२

सुख होय जो संसार मां तो केम सत्पुरुषो तजे ।
सुख सत्य हो संसार नुं तो केम ईश्वर ने भजे ॥
घरना धणी सरखा अने सरखा सदा छे चाकरो ।
सुख छे नहीं संसार-मां शाने वृथा चिंता करो ?

५५३

लक्ष्मी तणो आवास एवी राज गादी ने तजी ।
भावे थकी भिक्षुक थई भागी गया कां भरत जी ॥
बहु आधि व्याधि उपाधि नो तो ताप लागे आकरो।
सुख छे नहीं संसार मां शाने वृथा चिंता करो ॥

५५४

लाखों प्रयत्न कर्या छतां नहि राज्य मां पाछा फर्या।
गुण धाम गोपी चन्द जेवा राज्य मेली संचर्या ॥
गादी अने तकिया तजी कां सरस लाग्या साथरो।
सुख छे नहीं संसार मां शाने वृथा चिंता करो ?

५५५

मुनिवर महा योगीश पण संसार थी छेटी फरे।
जाणे रखे वलगी जशे एवीज रीती थी डरे ॥
प्रति दिवस देखे दृष्टि थी ते दु:ख रूप खरे खरो।
सुख छे नहीं संसार मां शाने वृथा चिंता करो ॥

५५६

जनम्या पछी माता पिता ना अंग पर आलोटता।
नाना प्रकार तणी रमतमां एक चित्ते चोंटता ॥
रमता अने भमता सदा गमता बधाने गेलमां।
आवरण अज्ञान मां खोया बधा दिन खेलमां ॥

५५७

गीडी दडा औ भार भमरा चोर आंख मिचावणी ।
नागेरिया गोफण तिती मल कुस्ति नी क्रीडा घणी ॥
कजिया अने कंकास कीधा मुर्खता ना महेलमां ।
आवरण अज्ञान मां खोया वधा दिन खेल मां ॥

विषयों मां वैराग्य कठिण छे ५५८

जोया घणा आ जगत मां योगी वियोगी भोगियो ।
निर्धन दरिद्री दीन जन जडता रखडता रोगियो ॥
झीणी नजरथी निरखतां धन धाम नी तकरार छे ।
विषयो विषे वैराग्य तो तलवार केरी धार छे ॥

५५९

संसार सुख सघलुं तजी वनवास करवा जाय छे ।
सघलुं क्षणिक जाण्या छतां बलवान पण बंधाय छे ॥
सम दम अने श्रद्धा तितिक्षा काम शुंकरनार छे ।
विषयो विषे वैराग्य तो तलवार केरी धार छे ॥

विश्वास क्यां करवो ? ५६०

विंद्वान मूर्ख समग्र-लोको लोभ मां ललचाय छे ।
छोटा अने मोटा बधा जन लोभ ने वश थाय छे ॥
ऊपर थकी आस्तिक उदार परोपकारी थई फरे ।
आ विश्वना व्यवहार मां विश्वास क्यां करवो अरे ?

५६१

सारूं नठारूं समझनारो सैंकडों मां कोकछे ।
बहुनो बिगाडी लाभ लइ लेनार लुच्चा लोक छे ॥
मननी परीक्षा मांहि थी हरिकोण आवी ने करे ।
आविश्वना व्यवहार मां विश्वास क्यां करवो अरे ॥

५६२

व्यवहार ने परमार्थ मां पूरो प्रपंच रचाय छे ।
रहिये भरोसे जेमने ते गुप्त गाली खाय छे ॥
अन्याय के अपराध थी अन्तर विषे न जरा डरे ।
आविश्वना व्यवहार मां विश्वास क्यां करवो अरे ॥

५६३

पोता समान न कोई पण जोतुं नथी जन कोइ ने ।
बलियो करे अपराध सामुं पाल निर्बल जोइ ने ॥
समझे सरस ते रीतिने निज स्वार्थ जे रीते सरे ।
आविश्वना व्यवहार मां विश्वास क्यां करवो अरे ॥

पाप के परिणाम ५६४

बहु जात होय जनावरोंनी जंतुओ झीणा बहु ।
गणतां गणाय न मुख वडे संख्या वधारे शुं कहुं ॥
विण मोत थी मरता न पामे लेश पण विश्राम ने ।
समजी जजे मन पापना फल रूप ए परिणाम ने ॥

५६५

निर्बल विचारा प्राणियोंना प्राण बलवाला हरे ।
ते पाप रूप कुकर्म करतां पेट पोताना भरे ॥
जाणे नहीं जड जन्स मां अन्तर रहेला राम ने ।
समजी जजे मन पाप ना फल रूप ए परिणाम ने ॥

५६६

भरवा पडे बहु भार के बहु मार पण पीटे पडे ।
नहिं पेट पूरा खाण के खड कडन खांवाने जडे ॥
मानव शरीर मल्या विना न रटाय रघुपति राम ने ।
समजी जजे मन पाप ना फल रूप ए परिणाम ने ॥

५६७

माता पिता पुत्रो अने पत्नी कुसंप कर्या करे ।
मन तोय पण संसार ना सम्बन्ध मां लपट्यां करे ॥
कजिया अने कंकाश थी करवुं गमें नहीं कामने ।
समजी जजे मन पाप ना फल रूप ए परिणाम ने ॥

५६८

पाणी तणा जो पूरमां ओवाल भेलो जाय छे ।
साथे रहे जूदो पडे एमज तणातो जाय छे ॥
संसार नी रीती फिरे नहिं लेश पण कल्पांतरे ।
समज्या विना शाणा करो शुं शोक ठालो अन्तरे ॥

५६९

तूं तीर्थ मां ज्यां त्यां विचारतो धर्म वाणी ने धर्यो।
वैराग्य थी वस्ती तजी ने वन विषे जइने वस्यो।
भगवांधरीने भटकतो रहि पेट भांग्वीने भर्युं।
शी रीत ईश्वर रींझसे ते सारूं कोनुं शुं कर्युं ?

५७०

पंच गव्य विशेष प्राशन कर्युं तें घोलि घोलिने।
तें नित्य स्नान त्रिकाल कीधुं चाहि गोमय चोलिने ॥
आहार एकज वार करवो ए व्रतोतें आचर्युं।
शी रीत ईश्वर रींझशे तें सारूं कोनुं शुं कर्युं ॥

५७१

तें होम हवन घणा कर्या घी हवन मां होम्या घणा।
तें चालती नदीने चढाव्यां दूध दहि गायो तणा ॥
बहु वर्ष मुख मुनि व्रत धर्युं तें ठीक तुज मनमांकर्युं।
शी रीत ईश्वर रींझशे तें सारूं कोनुं शुं कर्युं ॥

५७२

तें नव नवा नैवद्य करिने ते प्रसादी तूं जम्यो।
उपवास एकासण करीने देहने बहु तें दम्यो ॥
खाड जलनुं डाटियुं जे अन्न जमता ऊगर्युं ।
शी रीत ईश्वर रींझशे तें सारूं कोनुं शुं कर्युं ॥

५७३

ते प्रार्थना प्रभु नी करी मुख विविध वचनोच्चारि ने।
तें स्तोत्र पाठ घणा कर्या नित नित्य नियमो धारिने ॥
गद्‌गद् स्वरे गुण गान करतां आंख थी आंसूझर्युं ।
शी रीत ईश्वर रींझशे तें सारूं कोनुं शुं कर्युं ॥

५७४

भगवान लूखी भक्ति थी रींझे नहीं रंचमात्र ते ।
पण भक्ति पर उपकार साथे थाय प्रभु प्रिय पात्र ते ॥
ते वगर वाद विवाद कीधा काम तेथी शुं सर्युं ।
शी रीत ईश्वर रींझशे तें सारूं कोनुं शुं कर्युं ॥

सती मलिया सुन्दरी ५७५

ना विचार्युं मूर्ख ससेर ने सती नुं शुं थशे।
आगर्भवती हद बहार करतां कई स्थितिमां क्यां जशे॥
सति सुंदरी मलया तणा माथे न रही दुःख नी मणा।
पुरुषो तणा अविचार थी संकट सह्या सतिए घणा॥

सती दमयन्ती ५७६

जो पूर्ण स्नेह नुं पात्र नलनां नयन दमयन्ती हती।
नल राज्य हारी वन जतां ए स्वामी साथ रही सती॥
निष्ठूर नलने नारी तजतां घोर वन नावी घृणा।
त्यां पुरुष ना अविचार थी संकट सह्या सतिए घणा।

सती अंजना ५७७

जोयुं न सत्यासत्य जेनुं पियर के श्वसुराल ये।
निर्दय थया घर बहार करतां अंजना गर्भिणी थये॥
अन्याय करीने अंजना पर रेडया गिरि दुःख तणा॥
बहु पुरूष ना अविचार थी संकट सह्या सतिए घणा॥

सती सीता ५७८

सति कार्य महा युद्धो करी रामे हजारों ने हण्यां ।
ते गर्भिणी वनवास करतां गुण सतीना ना गण्या ॥
त्यां ख्याल बांधी शूद्र वचने राम भयद हुक्मो भण्या ।
ए पुरुष ना अविचार थी संकट सह्या सतिए घणा ॥

सती द्रौपदी ५७९

रमता जुगारे राज्य नारी बन्धु गज हारी गया ।
अति दुष्ट दुर्योधन तणे सति द्रौपदी कबजे गया ॥
पतियों छतां खेच्या सभा मां चीर सति द्रौपदि तणा ।
पुरुषो तणा अविचार थी संकट सह्या सतिए घणा ॥

५८०

कुचंक थयो मुनि मस्तके कणुं काढतां मुनिवर तणुं ।
अति अधम आल चढावियुं करी ने सहजनुं सो गणुं ॥
विष वाण ने वर सावतां जुलमी थया सरवे जणा ।
पुरुषो तणा अविचार थी संकट सह्या सतिए घणा ॥

[शिखरिणी छन्द] सुखी गृहस्थाश्रम ५८१

सदा आनन्देजो सदन सघलुं प्रेम मय छे ।
पितु भक्ति वाला सकल गुण शाली तनय छे ॥
हशे स्नेही रामा मनहर सुखे मिष्ट वदती ।
अती रिद्धि सिद्धि दिन प्रति दिन होय चढती ॥

५८२

मले प्रेमी मित्र नव हृदय मां स्वार्थ धरता ।
पड़े कष्टो त्यारे तन मन धने सहाय करता ॥
नथी अंगे व्याधि अगर न उपाधि दिल विषे ।
भला आज्ञा धारी अचल मन ना चाकर हशे ॥

५८३

अपंगो ने साधू सतत वसतोपास्य घरमां ।
रहे भक्ती भावे हृदय रमतुं रोज हरमां ॥
वली प्रेमी पोते विमल मन विद्वान सुत छे ।
अहा जेते पामे परम सुख शाली सुजन छे ॥

५८४

अहाहा एथी कै अधिक सुख वाला सुर नथी,
मले जो एवुं तो सरग सुख एथी दुर नथी ॥
हसे जेते पूर्व जप तप करी देव रिझव्या ।
अहा ते पुण्यात्मा सकल सुख धारी जन थया ॥

द्विज दुर्दशा ५८५

गया क्यां ए विप्रो जप तप अने होम करता ।
गया क्यां ए विप्रो प्रतिदिन हरि ध्यान धरता ॥
हशे क्यां ए विप्रो सतत सुख थी वेद वदता ।
अरे ए विप्रो नः तनय धन लोभे भटकता ।

५८६

द्विजोनीं आशीषे तन धन धरा सौख्य मलतुं ।
द्विजोनी आशीषे सकल भयने पाप टलतुं ॥
द्विजो नी श्रापो थी रवि शशि अने देव डरता ।
अरे तेना विप्रो विनय तजि जे ते उचरता ॥

५८७

महाराजा आवी मुनिवर कही पाय पडता ।
मुनि जो मांगे तो तन धन धरा राज्य धरता ॥
सुतो तेना होये नृपति दरबारे रझलता ।
करीने कासीदां अधम थइ ने पेट भरता ॥

५८८

गुमावी गायत्री जप तप भुलीने झगडता ।
प्रभूताने त्यागी घरघर अरे रे रखडता ॥
करे छे सेवा कै उदर भरवा शूद्र जन नी ।
करी काला धोला अचल धरता आश धन नी ॥

५८९

घणा पंथो काढी असल रित भांतो विसरता ।
प्रजा ना पैसा थी ठग गुरु बनी मोज करता ॥
मुनी नीति नेवे अवर मतनुं खंडन करे ।
अविश्वासी थाये जगत पण पोते नव डरे ॥

५९०.

गया विश्वामित्र मुनिवर गया गौतम अरे।
गया भारद्वाज भरत शुक ने व्यास मुनिरे ॥
वशिष्ठ वाल्मीक जमद मुनिने कश्यप ऋषी।
तपस्वी अत्री-वयां च्यवन भृगुने नारद ऋषी ॥

माता ५९१

घणा कष्टो वेठी उदर मंहि राखे गरभ ने।
वली जाया केडे मधुर पय दे पोषक बने ॥
तजी खाटूं तीखुं निरस जमवा टेक अधरो।
बिचारा बच्चा नी मन हरण माता नव मरो ॥

५९२

सुवाडे सूकामां शयन पलले ले स्थल करे।
दु.खी देखी-बाल तरस क्षुधनिद्रा पर हरे ॥
अरे ए माता नुं जिवनजग जी रक्षण करो।
विचारी बच्चा नी मन हरण माता नव मरो ॥

५९३

नथी माता तुल्ये सकल जगमां को सुख करे ।
भले आपे पीता अधिक सुख हेते वञ भरे ॥
तथापि माता नी सुख करण छाया नव हरो ।
बिचारा बच्चा नी मन हरण माता नव मरो ॥

५९४

घणुं राखे हेत सुत भगिनि दारा जग बधुं ।
वली भ्राता मिसो पण जननि नी पाछल बधुं ॥
प्रभो ! माता रूपी अचल धन कोनुं नव हरो ।
बिचारा बच्चा नी मन हरण माता नव मरो ॥

५९५

मरे माता जेनी परम सुख तेनुं झट टले ।
मरे माता तेनुं त्रिभुवन विषे कोइ न मले ॥
मले ना मां तुल्ये दश दिश भले शंकर फिरो ।
बिचारा बच्चा नी मन हरण माता नव मरो ॥

स्थिर कोई नहीं ५९६

दया वाला देवो मुनि वर अने मानव गया ।
कया राजा राणा बहु बल वडे निश्चय रह्या ?
तजी चाल्या सर्वे विविध विभवो भव्य भवनो ।
भरोसे शुं भूले नहीं अचल अन्ते त्रिभुवनो ॥

५९७

यशस्वी मांधाता नृप नल हरिश्चन्द्र सगरो ।
सिधाव्या मेलीने सहज सुख सम्पति नगरो ॥
कर्युं कूडे काले खबर न पडे एम अदनो ।
भरोसे शुं भूले नहीं अचल अन्ते त्रिभुवनो ॥

५९८

शिवी शर्याती क्यां गया पृथु अने राम सरखा ।
हवे तूं शुं जोई जगत जनने हाल हरखा ॥
अरे आछे मिथ्या कर मन विषे कांइ मननो ॥
भरोसे शुं भूले नहीं अचल अन्ते त्रिभुवने ॥

५९९

घणा पाडा घोडा वृषभ खरने वानर वली ।
दुखी सर्वे दीठा मृग करभ ने खच्चर मली ॥
पडे पेटे पादा पर वश पणे पिंड भरवो ।
नथी एवो मारे नरहरि हवे देह धरवो ॥

६००

सुखे पूरुं खावा खड कडब खाणा नहि जडे ।
सदा भूख्या तरश्या परघर विषे रोज रखडे ॥
पडे पीठे पाछो अरजु नरनो मार गरवो ।
नथी एवो मारे नरहरि हवे देह धरवो ॥

६०१

घणा घाणी ताणे वलि घणखरा खेड करता ।
घणा गाडा ताणे वलि घणा खरा भार भरता ॥
दुखी थातां थातां श्रम जनम थी छेक करवो ।
नथी एवो मारे नरहरि हवे देह धरवो ॥

६०२

दया हीणा दुष्टो कतल तलवारे बलि करे ।
पछी पापी पूरा उदर निजनां ए थकी भरे ॥
न जाणे ते जाते भव जलधी आ केम तरवो ।
नथी एवो मारे नरहरि हवे देह धरवो ॥

६०३

सुगंधी चीजो के कनक रस थी आ नथी कर्या ।
मलेने मूत्रेने रुधिर रस मासे थकि भर्या ॥
मळ्यो चर्म तेथी नहीं उपर ते मात्र वरवो ।
नथी एवो मारे नरहरि हवे देह धरवो ॥

कठण हृदयवाला धनवान ६०४

धनी पासे जेने निरधन विचारो कर गरे ।
अहंकारी थैने अरज नव तेनी उर धरे ॥
निसासा नाखीने निरधन पछी पंथ परतो ।
धनीना हैयाने कठण हरि तूं केम हरतो ॥

कुपुत्र ६०५

थतां पुत्री प्यारा अधिक उरमां स्नेहज धरे ।
हुलावे कूलावे हरख सुख थी लालन करे ॥
थता ज्यारे मोटा मद धर वये धारि करिमां ।
पिता सामा थाये अति बल जुओ मोह महिमा ॥

नारी कैसी ७०६

स्तनो जे नारी ना रुधिर रस मांसे थकि भर्यां ।
मधुर गोरा गालो पण रुधिर अस्थी थकि सर्यां ॥
भर्यां योनी कुंड स्रव रुधिर मूत्र विकृतिमां ।
नरो स्वादो माने तिहिं पण जुओ मोह महिमा ॥

शार्दूल विक्रीडित वृत्त काम वृत्ति पर ६०७

रे रे!-कुंभ कुवा विषे उतरिने पोकार तूं शुं करे ।
जो आयुष्य हशे हवे तुज तणो तो तूं अहिं ऊवरे ॥
जे थाशे नर नारिनाज वशमां तेनी दशा आ थशे ।
फांसो घालि गला विषे तुरत ते ऊंडे कुवे उतरशे ।

मोहजाल ६०८

मेडी माल महेल भंभ गजने मूकी जवूं छेकलो।
सम्बन्धी जन स्वार्थ अर्थि सब ही अन्ते रहे वेगला॥
वाडी खेतर बंगला बगिचली छाजे छजा गोखडा।
जागी जो रनमोह जाल सघली तैयार था तोडवा॥

वृद्धावस्था की दशा ६०९

काया कंपि जशे गती अटकशे दां तो पडी सहु जशे।
आंखे झांखो थशे न कान सुणसे लालो मुखे आवशे॥
मेधा मन्द थशे जीभ अटकशे काठी ग्रही चालशे।
एकज घडपण आवतां श्री पति नी भक्ती शी रीते थशे॥

पश्चाताप ६१०

खोयो बाल पणुं बधूं रमत मां अज्ञानता में रह्या।
भोगासक्त विषय विशेष तरुणि मां तारुण्य ते लो गयां॥
स्त्री पुत्रादि कने गण्यां सुखक । संसार नी अन्दरे।
भावे भाइ भजाय जो प्रभु हवे तोते घणुं सुंदरे॥

नर पशु ६११

आज्ञा अन्तरमां न धारण करे माता अने तात नी।
आशा शुं करवी पछी प्रति दिने सेवा तणी वात नी॥
के तेना करता अपार अवल पन्थे सदा संचरे।
को तेवा नर विश्वमां अवतरी शुं काम सारा करे॥

६१२

जाती नुं अभिमान लेशन जडे कर्कशो विशेषे सहे।
कायो थी मन थी अने वचन थी जे दीन ने दुःख दे॥
शक्ती सर्व प्रकार नी अवरने आडा थवा वापरे।
को तेवा नर विश्वमां अवतरी शुं काम सारा करे?

६१३

जो दुष्टो यमने अने नियमने वैरी गणी ने तजे।
वंटेला वलखावडे विषय ने एकाग्र चित्ते भजे॥
जन्मीने शम थी अनेदम थकी हाथे करी हीनरे।
को तेवा नर विश्व मां अवतरी शुं काम सारा करे॥

संसार की स्थिति ६१४

आंखे आंसु पडे नडे हर घडी चिंता करावे घणी ।
श्वासे होठ सुकाय नित्य नमले विश्राम लेशे घडी ॥
वर्झोला वशमां वली निरखवा लोगों मले गामना ।
आ संसार असार सात्र समझो कामो कशा कामना॥

६१५

चारे कोर सगा कुटुम्व सघला ताके तिरस्कार थी ।
जीव्या थी मरवुं गमे प्रतिदिने निःसार संसार थी ॥
निंदे दुर्जन लोक सज्जन हंसे दु.खो पडे दामना ।
आ संसार असार साव समझो कामो कशा कामना ॥

६१६

माता तात सगा सहोदर अने नारी न राज़ी रहे ।
पुत्रो प्रेम तजे वधे विकलता लोको कुवेणों कहे ॥
श्वासे लोहि सुकाय हाय करतां क्रोडों कुडी कामना ।
आ संसार असार साव समझो कामो कशा कामना ॥

संसार मे क्या किया? ६१७

खोयुं बालपणु पराधिन पणे खातां पितां खेलमां ।
गुंथाव्युं दिन रात यौवन विषे गोरी तणा गेलमां ॥
भारे भोग विलास निसंन विषे बातो विशेषे गमे ।
आ संसार असार मां अवतरी शुंसार लीधो तमे ॥

६१८

मारा पुत्र कलत्र मित्र सगिओं माणी सुखे मानता ।
झूठो वैभव जो चढे नजर मां तेने खरो जाणता ॥
राग द्वेष कलत्र पुत्र करतां तृष्णा न लेशे शमे ।
आ संसार असार मां अवतरी शुंसार लीधो तमे ॥

६१९

कीधा कर्म अनेक निन्दक नहीं राखी जरा लाज ने ।
ईर्षा ने अविवेक दंभ थकि ते पीडा करी लाख ने ॥
दीनों ने दुख आपवुं प्रतिदिने ते तो गण्यों ते वरे ।
भावे भाई भजाय जो हरि हवे ते तो घणुं सुंदरे ॥

शिखरिणी ६२६

स्वत: सुज्ञोपासे विदित कृत व्यासे वरणव्या |
कहो एवा केवा अधिक वली एवा नर चव्या ||
अरे एवुं जानी प्रति दिवस प्राणी प्रभू भज़ |
वृथा वाणी आणी तन गरव तू आतंक तज ||

(हरिगीत छंद) चतुर्विंश तीर्थंकरों के नाम ६२७

श्री आदिनाथ अजित संभव नाथ अभिनंदन गुणी।
श्री सुमति पद्म सुपार्श्व जिन चंदाप्रभो जग दिनमणि
सुविधी शितल श्रेयांस जिन वसुपुज्य सुविमल जगपति
स्वामी अनंत श्री धर्म शान्ति सौख्य सब को दे अती||

६२८

तिहुं लोक पूजित कुंथुजिन राजे अरह जग में प्रभो।
श्री मल्लिनाथ यश ख्याति जग भगवान मुनि सुव्रत विभो
नमि नेम पारस वीर ये चौवीस जिन कीरति भणी |
मुनि सूर्य कहे तिहुं काल भज सब भावना हो मन तणी

११ गणधरों के नाम   ६२९

श्री इन्द्र अग्नि वायु भूति व्यक्त नायक गुणपति ।
स्वामी सुधर्मा और मंडित मौर्य कंपित गणपति ॥
भ्राता अचल मेतार्य मुनि राजे सदा सुख भारती ।
परभास एका दस गणी दीजे सदा मुझ सम्मती ॥

१६ सतियों के नाम   ६३०

ब्राह्मी सुचन्दन बालिका राजी मती पुनि द्रौपदी ।
चूड़ा सुभद्रा सुन्दरी सुलसा शिवा सीता सती ॥
दमयंति कौशल्या मृगा पद्मावती परभावती ।
कुंतादि षोडश भगवती ध्यावो सदा चढती रती ॥

२९ मुनियों के नाम   ६३१

श्री पूज्य तारामुनि प्रवर्तक पूर्ण मलजी रत्न हैं ।
श्री कृष्ण ऋषिवर इन्द्र मोतीलाल संयम मग्न है ॥
शास्त्र कोविद है सिरेमुनि विज्ञवर सौभाग्य हैं ।
श्री चन्द्र वत्सच सूर्यमुनि दर्शन मिले अह भाग्य है॥

६३२

समरथ तथा सरदार मुनि सरदार सूरजरत्न है ।
श्री केसरी केवल तथा सागर महाव्रत लग्न है ॥
मोहन तथा सागर तपस्वी रुपचन्द्र नगीन जी ।
माणक तथा हीरा विनय चम्पा मधुर सौभाग्य जी ॥

इति हरिगीत सुमन संचय

संपूर्ण

श्री विजयलक्ष्मी विलास प्रेस, टौन हाल रोड,
बेंगलूर सिटि.

दोहा प्रकरण

अ. आ.

अति चंचल नित कलह रव, पति सों नहीं मिलाप ।
अधम तिया सा जानिये, पावे पूरण पाप ॥ १
अहंमन्यता आंतरिक, अहंकार अज्ञान ।
द्वेष दम्भ दुर्मति दुरित, दुर्जन की पहिचान ॥ २
अर्ब खर्ब को धन मिले, उदय अस्त को राज ।
तुलसी प्रभु के भजन बिन, सबहि नरक के साज ॥ ३
आश तजे माया तजे, मोह तजे अरु मान ।
हर्ष शोक निन्दा तजे, ते कबीर गुरु जान ॥ ४
आडंबर तजि कीजिये, गुण संग्रह चित चाहि ।
दूध रहित गउ नहिं बिके, आनी घण्ट बजाहिं ॥ ५
आज कहे कल को भजूं काल कहे फिर काल ।
आज काल के करत ही, अवसर जासी चाल ॥ ६
आछे दिन पाछे गये, गुरु से कियो न हेत ।
अब पछतावो क्या करे, चिड़ियां चुग गई खेत ॥

आये हैं सो जायंगे, राजा रंक फकीर। ८
एक सिहासन चढि चले, एक बन्धे जंजीर॥
आस पास योद्धा खडे, सभी बजावें गाल। ९
मजल महल से ले चला, ऐसा काल कराल॥
अति लक्ष्मी औ स्वजन जन, पापी के भी होय। १०
संत समागम हरिकथा तुलसी दुर्लभ दोय॥
अति ही सरल न हूजिये, देखो ज्यों बनराय। ११
सीधे २ छेदिये, वांके तरु बच जाय॥
अरि छोटा गिनिये नहीं, जासों होत बिगार। १२
तृण समूह को छिनक मां, जारत तनिक अंगार॥
आपे अपनी गरज थी, गरजू जगत जणाय। १३
विगर दरद घर वेद्य के, कभी न कोई जाय॥
अलि पतंग मृग मीन गज, एक २ की आंच। १४
तुलसी वाकी कौन गत, जिसके पीछे पांच॥
अगर तगर चंदन युगल, कस्तूरी कर्पूर। १५
गौलोचन औ कुंकुमा, अष्ट गंध भरपूर॥

आचारे अभिमान थीं, तप थी वधियो क्लेश ।
गर्व वध्यो ज्यों ज्ञान थी, अवलो भरियो वेष ॥ १६
अति भोजन के करन में, बुध बल होवे नाश ।
रोगन का वह घर बना, आलस रहता पास ॥ १७
अजगर करे न चाकरी, पंखी करे न काम ।
दास कबीरा यों कहे, सब को दाता राम ॥ १८
आव नहीं आदर नहीं, नहीं नैनों में नेह ।
ता घर कबहुं न जाइये, कंचन बरसत मेह ॥ १९
आव रहे आधार रहै, रहै नैन में नेह ।
ता घर नित ही जाइये, पत्थर बरसे मेह ॥ २०
अग्नि तुंग सहना सुगम, सुगम खड्ग की धार ।
नेह निभावन एक रस, महा कठिन करतार ॥ २१
अति छबि से सीता हरण हत रावण अति गर्व ।
अति हि दान ते बलिबंधे, अति तजिये भल सर्व ॥
अधम निधन को चाहते, पशु होते वाचाल ।
नर चाहत हैं स्वर्ग को, सुरगण मुक्ति विसाल ॥ २३

अति हि क्रोध कटु वचन हू, दरिद नीच मिलान |
अरि गुरुजन अकुलीनता, षट ये नरक निशान || २४
असन्तुष्ट द्विज नष्ट हैं, नष्ट तुष्ट नर राज |
नष्ट सलज्जा पातुरी, कुल नारी बिन लाज ॥ २५
आज काल रो साधु रो, व्याज बुहारण वेस |
राज माहि झगडे लडे, लाज न आवे लेश || २६
अधिको ए थी स्वर्ग मां, देव न दिसे कोय |
इन्द्र सदा सेवक थई, लक्ष्मी के वश होय ॥ २७
आलस तज उद्यम करो, चित मां करी विचार |
सुख पामे जन सर्वदा, वलि सुधरे संसार || २८
अपक्व फल ना बीज ते, बोवे फल नहिं थाय |
बीज विचारूं बगडशे, मिथ्या महेनत जाय || २९
अपजशपण शुभ काम नो, अपजश नहीं उजास |
अक्षर मां सौ शुभ गणे, कालज नी कालास || ३०
अति कृपालु संतोष व्रत, प्रभु चरणो में प्रीत |
नारायण ते संत वर, कोमल वचन विनीत || ३१

अजा पुत मैं मैं कहत, दीने अपने प्राण ।
नारायण मैं ना कभी, खाय मलीदा सान ॥ ३

आधी निज रूखी भली, सारी सों सन्ताप ।
जो चाहेगा चोपडी, बहुत करेगा पाप ॥ ३

आवत गाली एक है, उलटत होय अनेक ।
कहे कबीर न उलटिये, रही एक की एक ॥ ३

आसन मारे क्या हुआ, मरी न मन की आस ।
तेली केरा बैल ज्यों घर ही कोस पचास ॥ ३

आब गई आदर गया, नयनन गया सनेहि ।
ये तीनों तब ही गये, जबहि कहा कछु देहि ॥ ३

अनमांगा तो अति भला, मांग लिया नहि दोष ।
उदर समाना मांग ले, निश्चय पावे मोष ॥ ३

आशा करिये साधु की, अंत करै निरवाह ।
ताको संग न कीजिये, जाते होय विनाह ॥ ३

अवरहिं को उपदेश ते, मुख में परतो रेत ।
राशि बिरानी राख ते, खोया घरका खेत ॥ ३

अलंकार रस नायिका, छन्द सु लक्षण व्यंग।
जो जाने प्रस्तार सब, सों कवि गुनिय सुढंग॥ ४०
आंबा जांबू करमदा, चोथा कहिये बैर।
ऊपर से नरमी घणा, भीतर बहुत कठोर॥ ४१
अहो हरी कैसी करी, दो २ देह धरी।
मुझ अरु मेरे संत की, एक ही क्यों न करी॥ ४२
अपनी २ ठौर पर, सबको लगे दाव।
जल मैं गाडी नाव पर, थल गाडी पर नाव॥ ४३
अपनी पहुंच विचार कें, करतब करिये दोर।
तेते पांव पसारिये, जेती लांबी सोर॥ ४४
आपन काहू काम के, डार पात फल मूर।
ओरन को रोकत फिरे, रहिमन कूर बरूर॥ ४५
अनुचित उचित रहीम लघु, करहिं बडन के जोर।
ज्यों ससि के संजोग ते, पावत अग्नि चकोर॥ ४६
अब रहीम मुसकिल परी, गाढे दोऊ काम।
सांचे से तो जन नहीं झूठे मिले न राम॥ ४७

अपनी प्रभुता को सबै, बोलत झूठ बनाय | ४८
वेश्या बरस घटावती, जोगी बरस बढाय ||

अपनी भाषा है भली, अनुपम अपनो देश | ४९
जो कुछ अपनो है भलो, यही राष्ट्र संदेश ॥

इ

इह घूंघट में कपट है, झठ पेखो चितलाय |
अवगुण भरि या कामणी, वदन छिपाया जाय ॥ ५०

इल्म पढन उद्योग कर, वृद्ध काय पर्यन्त | ५१
इल्म पढे पहुंचे जहां, नहिं पहुंचे धनवन्त ||

उ. ऊ.

उष्ण २ रोटी भखे, शाक दाल ने भात | ५२
खातां पीतां बोलतां, जाय दिवस ने रात ॥

उत्तम को अपमान हो, जहां नीच को मान | ५३
कहा भयो जो हंस की, निन्दा काग बखान ॥

उत्तम जन की होड कर, नीच न होत रसाल |
कौवा कैसे चलि सके, राजहंस की चाल ॥ ५४
ऊंचे बैठे नहिं लहै, गुण बिन बडपन कोय ।
बेठ्यो देवल शिखर पर, वायस गरुड न होय ॥ ५५
उछेरिये अमृत वडे, मोटा मणिधर नाग |
फण करडे तो लेश पण, प्राण करावे त्याग ॥ ५६
उदय समै रवि रक्त है, अस्त हु रक्त दिखंत |
सज्जन संपति विपति में, एक ही रूप रहंत ॥ ५७
ऊपर गांठे धन हरे, तल गांठे धन खाय |
ओछी कलम से जो लिखे, जडा मूल से जाय ॥ ५८
ऊत्राडो संडास तो, ढांको नाक निदान |
त्यों छंछेडो नीच तो, करो बन्द निज कान ॥ ५९
ऊजड़ खेडा फिर बसे, निर्धन धनिया होय |
बीत्या दिन नहिं आवडे, मुआ न जीवे कोय ॥ ६०
उदर भरण के कारणे, प्राणी करत इलाज ।
बांचे नाचें रण भिडे, राचे काज अकाज ॥ ६१

ए. ऐ.

एक कनक अरु कामनी, तजिये भगिये दूर ।
हरि बिच डारे आंतरो, यम देसी मुख धूर ॥ ६२
एते मित्र न कीजिये, अति लखपति अरु बाल ।
ज्वारी चोरी तस्करी, अमिर और बेहाल ॥ ६३
एक २ अक्षर पढे, जाने ग्रन्थ विचार ।
पैर २ ही चलत जो, पहुंचे कोस हजार ॥ ६४
एके साधे सब सधे, सब साधे सब जाय ।
जो गृहि सेव मूल को, फूले फले अघाय ॥ ६५
एक उहर इक समय ही, उपजत एक न होय ।
जैसे कांटे बैर के, वांके सीधे दोय ॥ ६६
एक अदेखा जन बिना, विनय थकी वश थाय ।
जल सहु ने शीतल करे, ताता तेल सिवाय ॥ ६७
एक दिवस मां सूर्य नी, उभय गती देखाय ।
उदय थाय परभात मां, अस्त सांज रे थाय ॥ ६८

एक घडी आधी घडी, आधी हू मे आध ।
तुलसी संगति साधु की, हरे कोटि अपराध ॥ ६९
एक सुगंधित वृक्ष से, सब वन होत सुवास ।
जैसे कुल शोभित रहै होय, पुत्र गुणरास ॥ ७०
एक रुपयो सापडे, नाणा वट्टुं न थाय ।
मले सूंठनुं गांगडूं गंधी नहीं थवाय ॥ ७१
एक नारी अवगुण भरी, एक त्रिया गुणवंत ।
नारायण सो ही भली, जा पै रीझत कंत ॥ ७२
एक कनक औ कामिनी, विषफल किये उपाय ।
देखे ही ते विष चढे, चाखत ही मर जाय ॥ ७३
ऐसो संगी को नहीं, यथा जीव रो देह ।
चलती त्रिरियां रे नरा, डार चला कर खेह ॥ ७४

ओ. औ.

और न कडवो जानिये, कडवो बोल कुबोल ।
रात दिवस साले हिये, भीतर नाखे छोल ॥ ७५

ओछी मति युवतीन की, कहे विवेक भुलाय।
दशरथ नारी के वचन, वन भेजे रघुराय॥ ७६
औषधि खाय न पथ रहे, विषय व्याधि क्यों जाय।
दादू रोगी बावरा, दोष वैद्य को लाय॥ ७७
ओछी संगत स्वान की, दोनों बाते दुक्ख।
रुठो पकड़े पांव को तूठो चाटे मुक्ख॥ ७८
ओछे नर की प्रीति की, दीनी रीत बताय।
जैसे छिल्लर ताल जल, घटत २ घट जाय॥ ७९
ओछे नर के पेट में रहे न मोटी बात।
आध सेर के पात्र में, कैसे सेर समात॥ ८०

क

करुणा वत्सल सुजनता, आतम निन्दा पाठ।
समकित भक्ति विरागता, धर्म राग गुण आठ॥ ८१
काम क्रोध मद आरसी, सुत तिरिया जल फाग।
होत सयाने बावरे, अष्ट ठौर चित लाग॥ ८२

कृपण द्रव्य खरचे नहीं, जीवित यश नहिं लेत ।
जैसे अड़वो खेत को, खावे न खावा देत ॥ ८३
काने खीला घालिया, चरणे रांधी खीर ।
कर्मों ने बहु दुख दिया, चौविस मां महावीर ॥ ८४
कान कुटिल को हेम नग, नैन दीप मुख श्याम ।
अहो विधाता भूल के, काहे करियो काम ॥ ८५
काच कटोरा नैन जल, माणक मोती मन ।
इतना फाटा ना मिले, पहले रक्खो जतन ॥ ८६
काष्ट काट माला करी, मांहि पिरोयो सूत ।
माला बिचारी क्या करे, फेरण हार कपूत ॥ ८७
को जग में धनवान है, जाको मन न डुलाय ।
जो राखे सन्तोष मन, वह धनिकन में राय ॥ ८८
काक न होवे ऊजला, सौ मण साबुन धोय ।
पापी को प्रतिबोधतां, अकल गांठ की खोय ॥ ८९
काया देवल मन ध्वजा, विषय लहर लहराय ।
मन डिगि ज्यों काया डिगी, तो जड़ा मूल से जाय ॥

कहा करे आगम निगम, जो मूरख समझे न ।
दरपन को दोष न कछु, अंध वदन देखे न ॥ ९१
कज्जल तजे न श्यामता, मोती तजे न स्वेत ।
दुर्जन तजे न कुटिलता, सज्जन तजे न हेत ॥ ९२
काज पड़े सब ही बडा, बिन कारज सब छोट ।
पाई हेतु भंजावते, रुपया मोहर नोट ॥ ९३
कैसे निबहै निबल जन, करी सबल सों वैर ।
जैसे बसि सागर विषे, करत मगर सों वैर ॥ ९४
कुलअरु गुण जाने बिना मान न कर मनुहार ।
ठगत फिरत ठग जगत को, भेष भगत को धार ॥
काल करे सो आज कर, आज करे सो अब ।
पल में परले होगया, बहुरि करेगो कब ॥. ९६
कुल बल जैसे होय सो, तैसी करिये बात ।
वणिक पुत्र जाने कहा, गढलेवे की घात ॥ ९७
कबीर संगत साधु की, ज्यों गंधी की वास ;
जो कछु गंधी दे नहीं, तो भी वास सुवास ॥ ९८

कारज धीरे होत है, काहे होत अधीर |
समय पाय तरुवर फले, कितेक सींचहु नीर || ९९
कहा प्रीति मंजार सो, कहा राज सों प्रीत |
गणिका से पुनि प्रीत का क्या याचक सों प्रीत ||
को सुख को दुख देत है, देत करम झक झोर ।
उरझे सुरझे आप ही ध्वजा पवन के जोर | १०१
कहे स्याहि सुण री कलम मो शुं वरसे नूर ।
लिख कागज वांचत नहीं, तिनके मुख पर धूर ॥
कड़वो केशव लीमडो' सींचे साकर तोय ।
दूध पाय पिन रात पण, मीठो कदी न होय || १०३
कालो केशव कोयलो, बहु दूधे धोवाय |
केसर मां रस वस रहे, तो दण श्वेत न थाय || १०४
कामीं कोधी लालची, इनसे भक्ति न होय |
भक्ति करे कोइ शूरमा, जात वरण कुल खोय ||
कबिरा बैरी सबल हैं, एक जीव रिपु पांच |
अपने अपने स्वाद को, बहुत नचावे नाच || १०६

कबीर यह मन लालची, समझे नहीं गिंवार।
भजन करन को आलसी, खाने को हुशियार ॥ १०७
कबिरा कहा गरभिया, काल गहे कर केश।
ना जानू कित मानसी, क्या घर क्या परदेश ॥ १०८
केऽरि केश सुजंग मणी, पतिव्रता को गात।
सूर शस्त्र औ कृपण धन, जीवित होत न हाथ ॥ ९
कांसी कुत्ता कुमाणसा, बिन बोल्या कडकन्त।
स्वर्ण सूर अरु संतजन, मधुराई बोलन्त ॥ ११०
कंचन तजवो सहल छे, सहज लिया को नेद।
ईर्ष्या निन्दा त्यागना, तुलसी दुर्लभ एह ॥ १११
काणे को काणा कहे, कडवा लागत बैन।
धीरे मधुरे पूछिये, कैसे फूटा नैन ॥ ११२
कामी व्याधी लोधियो, मानी अरु मद अन्ध।
चुगल जुंवारी चोरटा, आठों कहिये अन्ध ॥ ११३
काम क्रोध मद लोभ की, जब लग घट के खान।
कहा मूर्ख कहा पंढिता, दीनों एक समान ॥ ११४

क्लेश कुसंप करे नहीं, वदे वचन हितकार ।
ते नारी नो धन्य छे, आ जग मां अवतार ॥ ११५
काव्य शास्त्र आनन्द में, बुध जन के दिन जात ।
कलह ओर निन्दा विषे, मूरख समय वितात ॥
काम क्रोध मद लोभ की, लगी हिये में आग ।
नारायण वैराग भट, सहित ज्ञान गये भाग ॥ ११७
कथा सुनत आयुष गई, भयो न मन अनुराग ।
नारायण तिन श्रवण सों, भवन भेल हैं नाग ॥
कथनी कथ केते गये कर्म उपासन ज्ञान ।
नारायण चउ युगन में, करणी है परमान ॥ ११९
कियो न मानत और को, परहित करत न आप ।
नारायण ता पुरुष को मुख देखे को पाप ॥ १२०
कपट गांट मन में नहीं, सब सों सरल सभाव ।
नारायण ता भक्त की, लगी किनारे नाव ॥ १२१
कहे मुनीश हिमवन्त सुन, जो विधि लिखा लिलार
देव दनुज नर गण मुनी, कोउ न मेटन हार ॥ १२२

कामिहि नारि पियारि जिम, लोभिहिं प्रिय जिम दाम।
ऐसी ही कब लाग हो, तुलसी के मन राम॥ १२३
कर कुसंग चाहे कुशल, तुलसी यह अफसोस।
महिमा घटी समुद्र की, रावण वसत पडोस॥
काम क्रोध लोभादि मद, प्रबल मोह की धार। १२५
तिनमे अति दारुण दुखद, माया रूपी नार॥
कबिरा सोई पीर है, जो जाने पर पीर। १२६
जो पर पीर न जानही, सो काफर बेपीर॥
कबिरा कलियुग कठिन है, साधु न मानै कोय। १२७
कामी क्रोधी मसखरा, तिनका आदर होय॥
कबिरा जोगी जगत गुरु, तजे जगत की आश।
जो वह चाहे जगत को, जगत गुरु वह दास॥
क्रोध प्रीति नाशक कहा, मान विनय का नाश। १२९
माया नाशै मैत्रि को, करे लोभ गुण नाश॥
करतघ्नी को मित्रगण, मुनि को दुष्कृत कर्म। १३०
हंस शुष्क सरवर तजै, क्रोधी को मति धर्म॥

क्रोधी नर को सुख नहीं, मानेच्छुक को शोक |
मायावी विकथा लगा, लोभी तृष्णा थोक ॥ १३१
कैलासादिक अचल गण, कनक रजत ते पूर |
लोभी तृण सम मानता, तृष्णा नभ सी दूर॥ १३२
कलह रहित कोविद कहे, समय शील ही सन्त |
बली धर्म ते नहिं चले, बन्धु करे दुख अन्त ॥
करे भलाई जीव की, नहिं भूले उपकार ।
निराधार आधार हो, सुज्ञ कथन यह धार || १३४
क्रोध प्रीति नाशक कहा, दुर्गति वर्धक क्रोध |
विनय मूल व्यक्तित्व का, दर्प जीव का शूल ॥
कथा कला बल सुख सभी, धर्म विशेषण सिक्त|
बिना विशेषण धर्म के, सभी व्यर्थ है रिक्त ॥ १३६
काम गृद्ध जो नर करे, शील महाव्रत खड ।
तप्त ताम्र की पुत्तली से आलिंगन दण्ड || १३७
कंटक या विषके सरिस, जीवन नाशी काम ।
भोगोंकी ये कामना, दुर्गति की हो धाम ॥ १३८

कुक्कुट शिशु मार्जार को, लखै भीति को दृष्टि।
वर्णलिंगि भी नारि को, लखै मौत की वृष्टि॥
काल दिवस का काज जो, आज होय तो श्रेष्ठ।
निष्ठुर हृदयी काल की, गति नहिं जाने जेष्ट॥
कबिर यह तन जात है, सके तो राख बहोरि।
खाली हाथों वे गये, जिनके लाख करोरि॥ १४१
कबीर आप ठगाइये, और न ठगिये कोय,
आप ठगे सुख ऊपजे, और ठगे दुख होय॥ १४२
कबीर नौबत आपनी, दिन दश लेहु बजाय।
यह पुर पट्टन यह गली, बहुरि न देखो आय॥
कबीर मरे मर जायंगे, कोइ न लेगा नाम।
उजडे जाय बसायंगे, छोड वसंता गाम॥ १४४
कबिरा खेत किसान का, मिरगों खाया झाड।
खेत बिचारा क्या करे, धनी करे नहिं वाड़॥ १४५
कबिरा गुरु की भक्ति बिन, राजा गदहा होय।
माटी लदे कुम्हार की, घास न डारे कोय॥ १४६

कबिरा सब जग निरधना, धनवंता नहिं कोय ।
धनवंता सो जानिये, पास राम धन होय ॥ १४७
करनी बिन कथनी कथे, अज्ञानी दिन रात ।
कूकर जिम भूसत फिरे, सुनी सुनाई बात ॥ १४८
कहता हूं कह जात हूं, कहा बजाउं ढोल ।
श्वासा खाली जात है, तीन लोक का मोल ॥ १४९
कबिरा भूखी कूकरी, करत भजन में भंग ।
याको टुकड़ा डार के, सुमरन करो निशंक ॥ १५०
कबीर शिष्य को चाहिये, गुरु को सब रस देय ।
गुरु को ऐसा चाहिये, शिष्य नहीं कछु लेय ॥ १५१
कबीर गर्व न कीजिये, रंक न हसिये कोय ।
अभी नाव समुद्र में, क्या जाने क्या होय ॥ १५२
कबीर मन पक्षी भयो, उड २ दश दिश जाय ।
जाकी जैसी संगति, सो तैसो फल पाय ॥ १५३
कौडी कौडी जोर के, जोरे लाख करोर ।
चलती वार न कछु मिल्यो, लई लंगोटी खोर ॥

करत २ अभ्यास के, दुर्मति होत सुजान ।
रसरी आवत जात ते, सिल पर होत निसान ॥
काम क्रोध अरु लोभ मद, मिथ्या छल अभिमान ।
इनसे मन को रोकवो, सांचो व्रत पहिचान ॥ १५६
कहत दरिद्री कौन सों, कहो मोहि कर नेह ।
धन तृष्णा जाके अधिक, जान दरिद्री एह ॥ १५७
कबिरा संगत साधु की जौ की भूसी खाय ।
खीर खांड भोजन मिले, साकत संग न जाय ॥
कंकर पाथर जोरि के, मसजिद लई चुनाय ।
ता चढि मुल्ला बांग दे, बहरा हुआ खुदाय ॥ १५९
कबिरा गर्व न कीजिये, अस जोवन की आस ।
टेसू फूला दिवस दस, खंखर भयां पलास ॥ १६०
कह जानो कहँ वा मुवो, ऐसे कुमति कमीच ।
हरि सो हेत विसार के, सुख चाहत हैं नीच ॥ १६१
कह रहीम कैसे निभै, बेर केरु को संग ।
वे डोलत रस आपने, उनके फाटत अंग ॥ १६२

कमला थिर न रहीम कहँ, यह जानत सब कोय।
पुरुष पुरातन की वधू, क्यों न चंचला होय ॥ १६३
करिये सुख को होत दुख यह कहो कौन सयान।
वा सोने को जारियें, जासों टूटे कान ॥ १६४
कारज धीरे होतु है, काहे होत अधीर।
समय पाय तरुवर फले, केतक सींचो नीर ॥ १६५
क्यों कीजे ऐसी जतन, जाते काज न होय।
परवत पर खोदे कुआ कैसे निकसे तोय ॥ १६६
कुल सपूत जान्यो परे, लखि शुभ लंछन गात।
होनहार बिरवान के, होत चीकने पात ॥ १६७
करै बुराई सुख चहे, कैसे पावे कोय।
रोपै बिरवा आक को, आम कहां ते होय ॥ १६८
कछु कहि नीच न छेडिये, भलो न ताको संग।
पाथर डारे कीच में, उछरि बिगारे अंग ॥ १६९
कस्तुरीने कपूरना ढगला करी डटाय।
पण दुर्गंधी डूगली, गंध न तणो हणाय ॥ १७०

काजी पण पाजी भये, शाह भये हैं चोर ।
ऊत्तम ने अधमे करे, लोभी निपठ निठोर ॥ १७१
किम्मत घटे न वस्तु की, होत परीक्षक भूल ।
जेने जेवूं पारखूं, करे मणी नुं मुल्य ॥ १७२
काया माया कामनी, तीनों भगिनि गणाय ।
तन मन दइ रक्षण करे, तो पण विनसी जाय ॥
बिन सहाय कारज महा, करी सके नहिं कोय ।
कहो हथोडो शु करे, जो नहिं हाथो होय ॥ १७४
करनी करे ज्युं भेड की, चले हंस की चाल ।
पकडे पूंछ शियाल की, किस विध उतरे पार ॥
कागा कुत्ता कुमाणसा, तीनों एक निवास ।
ज्यां ज्यां गेला नीसरे, त्यां त्यां करे विनास ॥ १७६
काचो पारो ब्रह्मरस, कन्या को धन खाय ।
कहे गुरु सुन चेलका, जडा मूल से जाय ॥ १७७
कामी कुल नहिं ओलखे, लोभी गणे न लाज ।
माया मरण न ओलखे, भूख न लखे अकाज ॥१७८

कंकर पत्थर जो चुगे, उनको व्यापे काम |
सीरा खाय बदाम का, उनकी जाने राम || १७९
केशन कहा बिगाडियो, जो मुडते सौ बार ।
मन को क्यों नहिं मोडियो, जा मे विषय विकार ||
करिये जन जहं वास तहं, पैसा नी पैदास ।
जंगल मां मंगल करे, पैसा जेनी पास || १८१
कफ हटे धातू फटे, अन्न पचे बल हीन ।
नैन ज्योति मंदी पडे, दो गुण औगुण तीन (तमाखू)
कागद को लिखवो कसो; कागद शिष्टाचार |
वो दिन भल जो ऊगसी, मिलस्यां बांह पसार ||
करि जिन हरिभक्ती नहीं, लिये विषय के स्वाद |
सो नहीं जमीं आकाश को, भयो ऊंट को पाद ॥
कामिनि को अबला कहत, ते नर मूढ अचेत |
इन्द्रादिक जीने दगन, सो अबला किहि हेत || १८५
इंद्रिय को संयम करी, पंडित बगुल समान |
देश काल बल जानि के, कारज करे सुजान || १८६

कोई की कडवी कभी, सुनना चहो न बात ।
तो नित अपनी जीभ को, कडवी करो न भ्रात १८७
करतघ्नी ने आपिये, खाये त्यालगि प्रीत ।
खावत तो भूसे नहीं, श्वान तणी ए रीत ॥१८८॥
कैक काम वखते बने, उतावले नहि थाय ।
ऋतु बिन फल लागे नहीं, करतां कोटि उपाय ॥१८९॥
कैक काम करनार नो, पछि यश वधे अपार ।
देखे नहि फल दृष्टिए, रायण रोपणहार ॥१९०॥
कैक काम अभ्यास ना, पण नहीं बुद्धि प्रकास ।
नटडी नाचे डोर पर, अकल नहीं अभ्यास ॥१९१॥
कल थी कारज नीपजे, वल थी ते न कराय ।
आगगाडि दिन एक मां, जुओ दूर बहु जाय ॥१९२॥
कदी अपूरण काम थी, काम भलू न कराय ।
थूंके कागल सांधिये, जोतां उखडी जाय ॥१९३॥

खेती जल बिन नष्ट है, जीव नष्ट तन कष्ट।
प्रजा नष्ट राजा बिना, नृप मंत्री बिन नष्ट ॥१९४॥
खात खनावे खें करे, खेखार्‌यो खम्मन्त।
चार खखा जो आदरे, सज्जन नाम धरन्त ॥१९५॥
खल औ दुर्जन दुहुनमें, भलो सर्प खल नाहिं।
सर्प डसत है काल में, खल जन पद २ माहि ॥१९६
खल अरु कांटे को कह्यो, दो विध सहज उपाय।
जूता से मुंह तोडिवो, (या) दूर हि से टर जाय १९
खाय न खरचे सूम धन, चोर सबै ले जाय।
पीछे ज्यों मधु मक्षिका हाथ मले पछताय ॥१९८॥
खेती पाती वीनती, परमेश्वर का जाप।
पर हाथन ना दीजिये, निडर कीजिये आप ॥१९९॥
खानदेश खाने से डूबा, दक्षिण डूबा गाने से।
मारवाड़ मनसूबे डूबी, पूरव डूबा गाने से ॥२००॥
खीज्यां करडे कूतरो, भूखो करडे वाघ।
विश्वासे ही वाणियो, छेड्यां करडे नाग ॥२०१॥

खोद खाद धरती सहे, काट कूट वनराय ।
कुटिल वचन सज्जन सहे, आन सहे नहिं आय ॥२०२॥
खाय पकाय लुटाय दे, करले अपना काम ।
चलती बिरियां रे नरा, संग न चले छदाम ॥२०३॥
गंग यमुन गोदावरी, सिंधु सरस्वति संग ।
सकल तीर्थ तहँ बसत हैं, जहँ हरिकथा प्रसंग ॥२०४॥
गिरिये पर्वत शिखर से पडिये धरणि मझार ।
दुष्ट संग नहिं कीजिये, डूबे काली धार ॥२०५॥
गार अंगारा क्रोध झल, निंदा धूंवां होय ।
इन तीनों को परिहरे, साधु कहावे सोय ॥२०६॥
गई वस्तु सोचे नहीं, आगम वंछा नाय ।
वर्तमान वर्ते सदा, सो ज्ञानी जग माय ॥२०७॥
गोधन गजधन वाजधन, अरु रतनन की खान ।
जब आवे मन्तोष धन, सब धन धूल समान ॥२०८॥
गाली दीधां एक है, पलटत होत अनेक ।
जो गाली पलटे नहीं, रहे एक की एक ॥२०९॥

गंग भंग दोउ बहन हैं, रहती शिव के संग।
मुरदा तारिणि गंग है, जिन्दा तारिणि भंग ॥२१०॥
गंगा तट पै जो बसे, वो क्यों पुष्कर न्हाय।
मात पिता घर जीवते, सो क्यों तीरथ जाय ॥२११॥
गाली खमवे गुण घणा, गाली देतां दोष।
उसको मिलती नारकी, उसे मिलेगी मोष ॥२१२॥
गुण बिन ही मोटो भयो, नाम धरयो शीतल।
ऊपर तो मुलमों चढ्यो, मांही कोरो पीतल ॥२१३॥
गोला ढाला गादला, कागज ने कप्पास।
ए सब कूट्यां गुण करे, अन कूट्यां अति नास ॥२१४॥
गरज परे कछु और है, गरज सरे कछु और।
तुलसी भांवर के परे, नदी सिरावत मौर ॥२१५॥
गाम नगर जनपद जरे, अग्नि होय लवलेश।
ता सम इन्द्रिय विषय भी, नासे गुण नि शेष ॥२१६॥
गौ ब्राह्मण अरु गर्भ की, गर्भिणि की कर घात।
महा गुरूतम पाप को, किये स्पष्ट यह बात ॥२१७॥

गिरि ते गिरि परवो भलो, भलो पकरिवो नाग।
अग्नि मांहि जरवो भलो, बुरो शील को त्याग ॥२१८॥
गंग पाप अरु ताप शशी, सुरतरु दारिद भंग।
पाप ताप अरु दीनता, हरहि साधु संतसंग ॥२१९॥
गुणवंतों के संग ते, लघु उत्तम पद पाय।
जैसे पुष्प प्रसंग ते, सूत्रहु शीश धराय ॥२२०॥
गुण तो गर्दभ सा करया, करया न लम्बा कान।
मूंछ करी पूंछ भूल ने, तो भूल गये भगवान ॥२२१॥
गाठे दाम न बांधई नहीं नारि से नेह।
कह कबीर ता साधु के, हम चरनन की खेह ॥२२२॥
गह कबीर कछु भेद ना, कहां रंक कहां राय।
प्रेम न बाडी ऊपजे, प्रेम न हाट विकाय ॥२२३॥

घ.

घर त्यागे तो क्या हुआ, तज्यो न माया संग।
सर्प तजी जिम कांचली, जहर तज्यो नहि अंग ॥२२४॥

घर में भूखा पड रहे, दस फांके हो जाय।
तुलसी भैया बंधु के, कबहुं न मांगन जाय ॥२२५॥
घर दारा व्हाली नहीं, पर दारा सों प्यार।
एने मोटो जाणवो, मूरख नो सरदार ॥२२६॥

च.

चार दिनन की चांदनी, यह संपति संसार।
नारायण हरि भजन कर, जासों होवे पार ॥२२७॥
चटक मटक नित छैल बन, तकत चलत चहुं ओर।
नारायण बिन सुध नहीं, आज मरे के भोर ॥२२८॥
चन्द्र वदन मृग सम नयन, गति गयंद मृदु बोल।
नारायण प्रभु भक्ति बिन, सब कौडी के मोल ॥२२९॥
चकई जो निशि बीछुडै, आय मिले परभात।
जो नर विछुरे जगपते, ना दिन मिले रात ॥२३०॥
चार वेद पट शास्त्र मे, बात मिले है दोय।
दुख दीने दुख होत है, सुख दीने सुख होय ॥२३१॥

चींटी से हस्ती तलक, जितने लधु गुरु देह ।
सब को सुख देवो सदा परम भक्ति को गेह ॥२३२॥
चोरी हिंसा परतिया, निंदा मिथ्या गाल ।
क्रोध लोभ अरु मान छल, तन वच मन से टाल ॥
चार मिले चौंसठ खिले, बीस रहे कर जोड ।
तनहूं से तनहू मिले, खुलि है सात किरोड ॥२३४॥
चंदन की चुटकी भली, गाडो भलो न काठ ।
चातुर तो एक हि भलो, मूरख भला न साठ ॥२३५॥
चतुर सभा मे मूर्ख नर, शोभा पावत नाहिं ।
जैसे बक शोभत नहीं, हंस मंडली मांहि ॥२३६॥
चार घडी रात्री पछी, सूर्योदय पर्यन्त ।
ब्राह्म मुहूरत जाणवूं, भज़न ध्यान बलवंत ॥२३७॥
चढते पानी पेसवो, आरति मे अरदास ।
ज्वर व्यापे लेवे दवा, तीनों बात विसान ॥२३८॥
चितन बिन विद्या नसै, ताडन से ही नार ।
अति भाषण लज्जा नसै, प्रजा दण्ड से धार ॥२३९॥

चूने बिन ज्यों पान है दर्शक बिन ज्यों रंग ।
दान शील तप धर्म तो, भाव बिना है जंग ॥२४०॥
चांवल चंदन तृण त्रिया, राग तुरी औ सूत ।
यै दस पतला ही भला, सिह शरण रजपूत ॥२४१॥
चढती पडती सर्व नी, ए दुनिया नी रीत ।
चन्द्र कला सुद मां वधे, वद मां घटे खचीत ॥२४२॥
चार चूकि बारह भुल्यो, छह नुं न जाणे नाम ।
गाम ढिंढोर पिटावियो, श्रावक म्हारो नाम॥ २४३॥
चंदन पडा चमार घर, नित उठ कूटे चाम ।
कह चन्दन कैसी भई, पडा नीच से काम ॥२४४॥
चकवा चातक सुघड नर, नित प्रति रहत उदास ।
खर घूघू मूरख नरा सदा सुखी दिन रात ॥२४५॥
चलनो भलो न कोस को भेटी भली न एक ।
करजो भलो न बाप को जो प्रभु राखे टेक ॥२४६॥
चलन २ सब कोइ कहे पहुंचे विरला कोय ।
इक कांचन इक कामिनी, दुर्लभ घाटी दोय ॥२४७॥

चातुर को चिन्ता घणी, नहिं मूरख को लाज |
सर ओसर जाने नहीं, पेट भरन से काज ||२४८||
चन्द्र टरे सूरज टरे, टरे जगत व्यवहार ।
पर दृढ व्रत हरिचन्द्र को, टरे न सत्य विचार ||२४९||
चाकर चोर औ परधी, नाई कुत्ता बाज |
धाप्यां काम करे नहीं, भूखा सारे काज ||२५०||
चाह गई चिन्ता मिटी, मनुवा बेपरवाह ।
जिनको कछु ना चाहिये, सो ही शाहंशाह ||२५१||
जासे रक्षा होत है, होत उसी से घात ।
कहा करे कोटिहु जतन, बाड काकडी खात ||२५२||
जात न पूछो साधु की, जो पूछो सो ज्ञान ।
मोल करो तलवार का, धरा रहन दो म्यान ||२५३||
जो विषया संतन तजी, मूढ ताहिं लिपटात ।
ज्यों नर डारत वमन कर, स्वान स्वाद सों खात २५४
जूवां चोरी मुख बिरी, प्याज घूंस परनार ।
जो चाहे दीदार तो, एती वस्तु निवार ||२५५||

जैसो गुण दीन्हें दई, तैसो रूप निबन्ध ।
ये दोऊ कहं पाइये, सोनो और सुगंध ॥२५६॥
जो धनवंता देत कछु, देय कहा धन हीन ।
कहा निचोरे नग्न जन, स्नान सरोवर कीन ॥२५७॥
जाहि मिले सुख होत है, ताहि बिना दुख होय ।
सूर्योदय फूले कमल, अस्त संकुचित सोय ॥ २५८ ॥
जो कहिये सो कीजिये पहिले करि निरधार ।
पी पानी घर पूछनो आछों नहीं विचार ॥ २५९ ॥
जो सेवक कारज करे, होत बडे को नाम ।
पत्थर तिरत कर नील के, कहत तिराये राम ॥२६०॥
जल न डुबोवे काठ को, कहों कहां की मीत ।
अपना सींचा जान के, यही वडों की रीत ॥२६१॥
जर लूटे छे जंगले, अभण एकलो भील ।
वस्ती मां लूटे वणिक, वेश्या वेद वकील ॥ २६२ ॥
जिन मुख अन्न अरोगिये, तिन मुख जपिये जाप ।
तिन मुख धूवां नीसरे, पूर्व जनम को पाप ॥२६३॥

जिमणे स्वर भोजन करे, डावे पीवे नीर |
डावी करवट सोवतां, सुख मां रहे शरीर || २६४ ||
जो जांको प्यारो लगे, सो तिहि करत वखान |
जैसे शिवजी विष भखी मानत अमृत पान ||२६५||
जो जांको गुण जानहीं, सोतिहिं आदर देत ।
कोकिल अम्ब हि लेत है, काक निबोरी लेत ||२६६||
जाहि संग दूषण लगे, तजिये ताको साथ ।
मदिरा मानत है जगत, दूध कलाली हाथ ||२६७||
जिम पनिहारी जेबडी, खेंचत कटे पषान |
तैसे नर उद्यम कियां होत सही विद्वान || २६८ ||
जेने ज्यां ग्राहक मिले, तो त्यां उपजे मुल्य |
हीरो पण ग्राहक बिना, रखडे कंकर तुल्य || २६९ ||
जो राखे नरमास तो, करे शत्रु में वास |
बीच बतीसी ही रहे, जीभ राख नरमास || २७० ||
जोखरचे आवक बिना, तो धनखूटी जाय |
टांको खूटे पण जुवो, कूप अखूट दिखाय || २७१ ||

सुत याचे जगजननि ते, कर बकरे का साटा |
आप पुत्र खिलावन चाहे, पुत्र परायो काटा ||२७२||
जिसे राज अधिकार हो, करे न न्याय विचार।
फिर वांके अधिकारमे, रहे न आदि अकार ॥ २७३ ||
जन्म अन्ध देखे नहीं, काम अन्ध तस जान।
तैसे ही मद अन्ध है, अर्थी दोष न मान || २७४ ॥
जैसे धेनु हजार में, वत्स जाय लखि लेत।
तैसे ही कीन्हे करम, कर्ता को ग्रहि लेत || २७५ ||
जिनके सहजहि पग धरत, रज सम होत पषान |
नारायण तिन को कहूं, रह्यों न नाम निशान ॥२७६||
जिनके रूप निहारके, रवि शशि रथ ठहरात |
नारायण ते स्वप्नसम, भए मनोहर गात ॥ २७७ ||
जिन सन्तन के दरस सों "नारायण" अघ जात |
तिन्हें कहत ये फिरत हैं, घर २ टुकडे खात २७८
जिनके मन निज वश भयो, तज कर विषय विलास |
"नारायण" ते घर रहो, चाहे कर बनवास ||२७९॥

जो शिर काटे हरि मिलें, तो पुनि लीजे दौर ।
"नारायण ऐसी न हो, ग्राहक आवे और ॥ २८० ॥
जैसी हो भवितव्यता, वैसी उपजे बुद्ध ।
होनहार हिरदे बसै, बिसर जाय सब सुद्ध ॥२८१॥
ज्यों तिरिया पीहर बसे, सुरत रहे पिय मांहि ।
ऐसे जन जग में रहे, प्रभु को भूले नाहिं ॥२८२॥
काम जहां तहं नाम ना, जहां नाम नहि काम ।
दोनों कबहूं ना मिलें, रवि रजनी इक ठाम ॥२८३॥
जाके दृग लज्जा नहीं, बांक विचल हो जास ।
तासों धरो न आश कछु, त्यागे सब विश्वास २८४॥
जो कारज करना नहीं कहो न ताको भूल ।
जो कहकर करता नहीं, सो जन हल को सूल २८५
जे नर परम प्रवीन जग, जानत सकल विचार ।
तेहु काम की कुटिलता, होत मूढ लखि नार २८६
जो गरीब सो हित करे, धन रहीम वे लोक ।
कहां सुदामा बापरो, कृष्ण मिताई योग ॥ २८७ ॥

जहां लाभ तहां लोभ है, बढे लाभ से लोभ।
दो मासा हित क्रोड भी, नहीं लोभ को थोभ ॥
जीव अकेला जन्न ले, मृत्यु अकेला पाय।
भवनिधि मां भमतो रहे, मोक्ष अकेला जाय २८९
जा ी जिह्वा वश रहे, कुल यश पै ना दाग।
वि ,,म फिर क्या करें, कुपित बनी कलि आग ॥
जब लौ आतम देहमें, याचनार्थ मत डोल।
न : कर आज्ञा भंग भी, दीन बैन मत बोल २९१
जो जाकी संगति करे, सो तैसा ही होय।
कुसुम वर्ग सह तिल सभी, सौरभ युत ही जोय ॥
जीवन जलकी बिन्दु है, कमला तरल तरंग
स्वप्न तुल्य सुत प्रेम है, करो श्रेष्ठको सग ॥२९३॥
जन्म जरा अरु मरण कर, भमंते सब गति मांहि।
इन रोगों का नाशकर, विद्यमान सुख नांहि ॥२९४॥
जन्म जरा मां दुक्ख है, रोग मृत्यु मां दुक्ख।
अखिल विश्व दुख से सना, जह जावें तहं दुक्ख ॥

जाट जंवाई भाणजो, रैवारी सोनार।
कदी न होवे आपणा, कर देखों व्यवहार ॥ २९६ ॥
जेसो वन्धन प्रेमको, वैसो वन्ध न और।
काष्ठ भेद समरत्थ हू, कमल न छेदे भौर ॥ २९७ ॥
जितने तारे गगन में, उतने शत्रु न होय।
कृपा होय जिनराज की, बाल न वांको होय २९८
जो हो लोभी पातकी, व्यसनी क्रूर गंवार।
उन्हें कभी मत दीजिये, थोडे भी अधिकार ॥२९९॥
ज्यों केले के पात में, पात २ में पात।
त्यों चतुरन की बात में, बात २ में बात ॥ ३०० ॥
जेने जेनुं काम नहीं, ते नहिं परखे दाम।
जो हाथी सस्तो मले, गरीब ने शुं काम ॥ ३०१ ॥
जहर खात तो नर मरे, देख्यां मरे न कोय।
नारी निरखत विष चढे, मन तन चंचल होय ३०२
ज्यों समदृष्टी जीवडो, करे कुटुम्ब प्रतिपाल।
अन्तर्घट न्यारो रहे, धाय खिलावे बाल ॥ ३०३ ॥

जहं डूंगर तहं मोरिया, जहं सरवर तहं हंस ।
जहं वांधो तहं भरमली, जहं दारू तहं मांस ॥३०४॥
जीन्हें जो पितु मात को, लियो न आशिर्वाद ।
व्यर्थ तांस जीवन गयो, नर नहि सों हि निषाद ॥
जितना प्रेम हराम पर, उतना हरि पर होय ।
चला जाय वैकुण्ठ में, पला न पकडे कोंय ॥३०६॥
जाके संग दूपण दुरे, करिये तिहिं पहिचानी ।
जैसे समझे दूध सब, सुरा अहीरी पानी ॥ ३०७ ॥
जिहि प्रसंग दूषण लगे, तजिये ताको साथ ।
मदिरा मानत है जगत, दूध कलाली हाथ ॥३०८॥
ज्यों रहीम गति दीप की, कुल कपूत गति सोय ।
बारे उजियारो लगे, तले अंधारो होय ॥ ३०९ ॥
जिम मोरी तालावकी, पाल दखल नहिं देत ·
धन को धोरी मान है, चोंर लोक नहि लेत ॥३१०।
जे जेने अभ्यास नहीं, ते तेने नहि स्वाद ।
अंधा आगल आरसी, वहिरा आगल नाद ॥३११॥

जो कारज रस्ते पडे, होवे श्रम अति अल्प।
जो पेडा फेरे चढे, घोडा ने श्रम स्वल्प ॥३१२॥
जन आलसना जखम थी, जे कोई जखमी थाय।
पडे पथारी पाथरी, जीवन रहित जणाय ॥३१३॥
जो तोको कांटे बोवे, वाको बो तू फूल।
तो को फूल के फूल है, वाही को तिरशूल ॥३१४॥
जा घट प्रेम न संचरै, सो घट जान मसान।
जैसे खाल लुहार की सास लेत बिन प्राण ॥३१५॥
जहां प्रेम तहँ नेम ना तहां न मति व्यौहार।
प्रेम मगन जब मन भया, कौन गिनै तिथि वार ॥
जब लगी भक्ति सकाम है, तब लगी निष्फल सेव।
कह कबीर वह क्यों मिले, निष्कामी निज देव ३१७
जब लग नाता जगत का, तब लग भक्ति न होय।
नाता तोडै हरि भजै, भक्त कहावै सोय ॥ ३१८ ॥
जा मरने से जग डरै, मरे होय आनन्द।
कब मरिहों कब पाइहों, पूरन परमानन्द ॥३१९॥

जाही ते कछु पाइये, करिये ताकी आस ।
रीते सरवर पै गये, कैसे बूझत प्यास ॥ २२० ॥
जो जेहि भावे सो भलौ, गुन को कछु न विचार ।
तज गज़ मुकता भीलनी, पहिरति गुंजाहार ॥२२१॥
जो चेतन ते क्यों तजै, जाको जासों मोह ।
चुम्बक के पीछे लग्यो, फिरत अचेतन लोह ॥२२२॥
जो पावै अति उच्च पद, ताकौ पतन निदान ।
ज्यों तपि तपि मध्याह्न लौ, अस्त होतु है भान ॥
जूवा खेल होत है, सुख सम्पति को नाश ।
राज काज नल ते छुट्यो, पांडव किय बनवास ॥
जो पहिले कीजे जतन सो पीछे फलदाय ।
आग लगै खोदे कुवा, कैसे आग बुझाय ॥ २२५ ॥
जिस हिन्दू को है नहीं, हिन्दी का अनुराग ।
निश्चय उसके जानलो, फूट गये है भाग ॥२२६॥

तनक बडाई पाय कर, मन में अधिक गरुर |
नारायण जिन वैठ मग, साहिब को घर दूर ||३२७||
तात मात तिय भ्रात सुत, और सकल परिवार |
नारायण अपनो वही, जाको हरि सों प्यार ||३२८||
तनक मान मनमें नहीं सब राखत प्यार |
नारायण ता संत पै, वार २ बलिहार || ३२९ ||
तुलसी इस संसार में, भांति २ के लोग |
सब सों हिलमिल बोलिये, नदी नाव संयोग ३३०
तुलसी इस संसार में, स्थिर तो है कछु नाहिं |
तद्यपि दाता पुरुष को, नाम रहे जग माहिं ||३३१||
तुलसी या जग आन के, कर लीजे दो काम |
देवे को टुकरा भला, लेवे को हरि नाम ||३३२||
तुलसी पिछले पाप सों, हरि चरचा न सुहाय |
जैसे ज्वर के जोर मे, भोजन की रुचि जाय ||३३३||
तुलसी कहत पुकार के, सुनो सकल दे कान |
हेमदान गजदान ते, बडा दान सन्मान ||३३४||

तुलसी या संसार में, सबहि भये समरत्थ ।
इक कंचन इक कुचन को, जिन न पसार्यो हत्थ ॥
तन कर मन कर वचन कर, देत न काहू दुक्ख ।
तुलसी पातक झरत हैं देखत उनको मुक्ख ॥३३६॥
तुलसी गुरु परताप से, ऐसी जान पडी ।
नहीं भरोसा स्वास का, आगे मोत खडी ॥३३७॥
तुलसी जग में यों रहे, ज्यों जिह्वा मुख माहिं ।
घीव घणा भक्षण करै, तौ भी चिकनी नाहिं ३३८
तरुवर सरवर संत जन, चौथे वरसे मेह ।
परमारथ के कारणे, चारों धारे देह ॥ ३३९ ॥
तीर तुपक से जो लडै, सो तो शूर न होय ।
विषय जीत सेवा करे, शूर कहावे सोय ॥ ३४० ॥
तृष्णा चिन्ता दीनता, माया ममता नार ।
ये पट डाकिनि पुरुष का, पीवत रुधिर निकार ३४१
तुलसी स्वारथ के सगे, बिन स्वारथ कोउ नाय ।
सरस वृक्ष पक्षी वसे, निरस भये उढ जाय ॥३४२॥

तीर लगो गोला लगो, लगो मरण का घाव ।
नैना किसको ना लगो इसको नहीं उपाय ॥३४३॥
तुलसी या संसार में, पांच रतन है सार ।
साधू संगत हरिकथा, दया दान उपकार ॥३४४॥
तमाखु रांड है टेगडी, दिलसे राखो दूर ।
पेलां बिगाडे कापडा, पछे बिगाडे नूर ॥ ३४५ ॥
तुलसी साथी विपति के, विद्या विनय विवेक ।
साहस सुकृत सत्यव्रत, राम भरोसो एक ॥ ३४६ ॥
तीरे तृण अरु तूमडा, तीरे गाय औ यान ।
सद्भागी तिरे पुण्य ते, ना पापी पाषान ॥ ३४७ ॥
तन ढके मच्छर उडे, रहे न कुल की लाज ।
स्वान पूंछ औ कृपण धन, कौन काम भुवि राज ॥
तप करतां यौवन गयो, लक्ष्मी गयी पुण्यदान ।
संथारे काया गई, एता गया न जान ॥ ३४९ ॥
तंद्रा निद्रा द्यूत तिय, नाटक विध विहार ।
विद्या मे षट विघ्न हैं, पंडित कहे पुकार ॥ ३५० ॥

तपसी भूषण है क्षमा, है चरित्र का जान।
शान्त व्यक्ति समाधि है, शिष्य विनय गुण ध्यान॥
तप ही के माहात्म्य ते, सुरगण किंकर जान।
जाति हीन हरिकेशि के, दास हुए सब आन ॥३५२॥
तप का अतिशय क्या कहें, जहं तहं जो सुख भान।
भवन मध्य जो सुख मिले, तप का ही फल मान॥
तुम आवो नित एक डग, हम आवें डग अट्ट।
तुम हमसे करडे रहो, हम रहे करडे लट्ट॥ ३५४॥
तन को योगी सब करे, मन को विरला कोय।
सहजे सविधि पाइये, जो मन योगी होय॥३५५॥
तन मन नी पीडा टले, भय नुं थाय न भान।
सुख उपजावे सर्व ने, विद्या दान विधान॥३५६॥
तुलसी पर घर जाय के दुःख न कहिये रोय।
अपना भरम गुमाइये, होना हो सो होय॥३५७॥
तुलसी मीठे वचन से, सुख उपजत चहुं ओर।
वशीयरण यह मन्त्र है, परिहरु वचन कठोर ॥३५८॥

ताको अरि कह करि सके, जाके यतन उपाय।
जोर न ताती रेत में, जाके पनही पांय ॥ ३५९ ॥
तिलक छाप माला जटा भगवे तन पट छार।
दण्ड कमण्डलु वेप तन, उदर भरण व्यवहार ३६०
तन पवित्र सेवा किये, धन पवित्र कर दान।
मन पवित्र प्रभु भजन कर, होत त्रिविध कल्याण॥
तन को धोना सहल है, मन धोना मुस्कल।
मोहन मन धुप जाय तो, सारी बात सहेल ॥३६२॥
तरुवर फल नहि खात है, सरवर पिवे न पान।
कर रही परकाज हित, सम्पति करे सुजान ॥३६३॥
तुलसी कर पर कर करो, करतल करो न कोय।
जा दिन कर तर कर करो, ता दिन मरन भलोय॥
ते माता पितु शत्रु सम, सुत न पढावे जौन।
राजहंस मधि वक सरिस, सभा न सोभित तौन॥
तृष्णा वैतरणी नदी, यम स्वरूप है रोष।
काम धेनु-विद्या अहे नन्दनवन संतोष ॥३६६॥

तृष्ण मिटे सन्तोष ते सेवे अति बढ जाय ।
तृण डारे आग न बुझे, तृण विहीन बुझ जाय ३६७
तन रोगी शिर शत्रुता, जर आवे न जाय ।
पर जो सम्प कुटुम्ब मां, शीतल रहे सदाय ॥३६८॥
ते नर सुधर्यो ते भण्यो, बुद्धिमान पण तेह ।
भूले नहिं भगवान ने, डरे दोष थी जेह ॥३६९॥
तेने काम न सोंपिये, जे दिलगीर जणाय ।
आंखे पाटो बांधिय, जाते दुक्ख नहि धाय ॥३७०॥
ते जु रत्न पायो भलो जान्यो साधु समाज ।
प्रेम कथा अनुदिन सुनी, तक ना उपजी लाज ॥

द

दुष्कृत मे हों आलसी, प्राणीवध में पंग ।
परनिन्दा में बधिर हो, नयन नारि पै भंग ॥३७२॥
दया धर्म उत्तम कहा, शील व्रतों में श्रेष्ठ ।
अवितथ वत कीरति नहीं, अन्न दान मे ज्येष्ठ ॥

दान शील तप भावना, धर्म चतुर्विध होय।
भाव धर्म उत्तम कहा, सब धर्मों को जोय ॥३७४॥
दान शील तप भावना धर्म भेद हैं चार।
भाव कर्मदल दलन हित, परमौषध है धार ॥३७५॥
दर्दुर पावन भावते, प्रभु वन्दन को जाय।
काल ग्रास पथ मां बना, देव रूप भइ काय ॥३७६॥
देव नरक तिर्यंच औ, मानव गति के मांहि।
को नर ऐसो है कहो, पाप कर्म हो नाहि ॥३७७॥
दुष्ट त्रिया शठ मित्र औ, उत्तर दायक दास।
तास मृत्यु संशय नहीं, सर्प वास गृह जास ॥३७८॥
दाम बिना निर्धन दुखी, तृष्णा वश धनवान।
कछु ना सुख संसार में, सब जग देख्यो छान ॥३७९॥
दुख में कोई ना मिले, सुख में मिले अनेक।
मोहन दुख में जो मिले, सो लाखन में एक ॥३८०॥
दुर्जन पहिले वंदिये, पीछे सज्जन सोय।
मुख प्रक्षालन के प्रथम, गुदा प्रक्षालन होय ॥३८१॥

दम्भ सहित कलि धर्म सब, छल समेत व्यवहार।
स्वार्थ सहित सनेह सब, रुचि अनुसरत आचार ॥
दुष्ट कर्म मीठे लगे, करत बार सुख देत।
फल इनका है अति बुरा, भुगत प्राण हर लेत ॥३८३॥
देखो करनी कमल की, कीनो जल से हेत।
प्राण तज्यो प्रेम न तज्यो, सूख्यो सरहिं समेत ३८४
दीपक तमको खात है, तो कज्जल उपजात।
जैसो अन्न जु खात है, तैसी सन्तति पात ॥३८५॥
देह २ गुरुवर कहे, देह छन्ता कर दह।
बिना देह दे ना मिले, देह छेह तव खेह ॥३८६॥
दसे न विद्या आदरे, सोले गुण न प्रकाश।
बीसे सुत सुधर्यो नहीं, तो सुधर्या न आस ॥३८७॥
दुर्जन मुख मां दुर्वचन, सज्जन मुख मीठास।
होय सुगन्धी बाग मां, गन्धा तो संडास ॥३८८॥
दुगुने तिगुने चौगुने, पंच कछ अरु सात।
आठों ते पुनि नौ गिने, नौ के नौ रह जात ॥३८९

दाता आगे लक्ष्मी, ठाडी रहैं हजूर ।
जैसे गाराराज को, भर २ देत मजूर ॥३९०॥
दोष पराया देख कर, ताली देत हसंत ।
अपना याद न आवई, जाको आदि न अन्त ॥३९१॥
देह धरे का गुण यही, देह देह कछु देह ।
देह खेह हो जायगी, (फिर) कौन कहेगा देह ॥३९२
दुःख में सुमिरन सब करे, सुख में करे न कोय ।
जो सुख मे सुमरन करे, तों दु,ख काहे को होय ।
दण्ड दुष्ट को देत जो, सत सज्जन सनमान ।
न्याय कोष वृद्धी करे, नरवर चतुर सुजान ॥ ३९४॥
दुर्जन दर्पणसम सदा, करि देखो हिय गौर ।
सन्मुख की गति और है, विमुख भये कछु और ॥
दीनो दान कुपात्र को ज्ञान धूर्त को दीन ।
राखी मोरा चरु मिले, फलीभूत नहिं तीन ॥३९६॥
दानशक्ति प्रिय बोलवो, धीरज उचित विचार ।
ये गुण सीखे ना मिले, स्वाभाविक हैं चार ॥३९७॥

दुर्जन मंडल कुटिलता, सज्जन मंडन प्रीत।
मुख मंडन कोमल वचन, नरपति मंडन नीत ॥३९८
दूध नीर भेलो हुवो, बीच पड्यो छलि लूण।
तीतर भीतर कर दियो, अबे मिलावे कूण ॥३९९॥
दया नहीं जो दिल विषे, अन्तर क्रोध गुमान।
परहित देखी पर जले, नहि श्रावक संतान ॥४००॥
दुःखी कहत हैं कौन को, हम दुनिया के बीच।
देख परोदय जो जरे, दुखी रहत वह नीच ॥४०१॥
दुनिया चांद मजीठ रग, पुरुष वचन प्रतिपाल।
पत्थर रेख रु करम गत, ये नहिं मिटन जमाल ४०२
दीर्घरोग दारिद्य औ, कटुक वचन लघु लोग।
तुलसी प्राण समान जो, तुरित त्यागवे योग ४०३
दुष्ट न छोडे दुष्टता, कैसेहू सुख देत।
धोयेहूं सौ वेर के, काजर होत न श्वेत ॥४०४॥
देतां दौलत ना घटे, ज्यों ज्यों होत अटूट।
जैसे खेत चगान को, चूंटत बढत अखूट ॥४०५॥

देखो अवसर को भलो, जासे सुधरे काम।
खेती सूके बरसत्रो, सुंदर होत निकाम ॥४०६॥
दोष भरी न उचारिये, यदपि यथारथ बात।
कहे अन्ध को आंधरो, मान बुरे सत रात ॥४०७॥
दुःख सहे दुनिया विषे, तेनो यश उचराय।
राम रु नल पांडव तणी, वातां बहु वंचाय ॥४०८॥
दुर्जन की किरपा बुरी, सज्जन को भल त्रास।
सब सूरज गरमी करे, तब बरसन की आस ४०९
दुष्ट स्त्रिया पोषण किये मूर्ख शिष्य उप देश।
औ दुखियन व्यौहारसे, विबुधहु लगे किलेश ॥४१०
देखा देखी जो करे, बिन समझे ते व्यर्थ।
वगर भण्यो लीटा लखे, एमां मले न अर्थ ॥४११॥
द्रव्य हीन सब को लखे, दीनहिं लखे न कोय।
जो रहीम दीनहिं लखे, दीनबन्धु सम होय ॥४१२॥
दयावान नर जीव को, अभयदान ही देत।
जीवलोक मे डर नहीं, नहीं भीति को खेत ॥४१३॥

दोषहिं को उमहै गहै, गुन न गहे खल लोक।
पिये रुधिर पय ना पियै, लागि पयोधर जोंक ||

ध

धीर परखिये विपति में, मीत परखिये भीर |
ज्ञान परखिये हानि मे, यति योषित के तीर ||४१५||
धन अरु धान्य प्रयोग में, विद्या आगम मांहि |
भोजन अरु व्यवहार मे, लज्जा अनुचित नाहिं ||४१६||
धन जोवन अरु ठाकुरी, ता ऊपर अविवेक |
ये चारीं भेले हुए, अनरथ करे अनेक ||४१७||
धर्म नियम पाल्या विना, प्रभू भजन ते व्यर्थ।
औषध सेवन शुं थशे, पाले नहिं ज्यों पथ्य ||४१८||
धनवंता कांटा लगे, दौडे लोक हजार |
निर्धन गिरे पहाड से, कोई न पूछे सार ||४१९||
धर्म घटत ही धन घटे, धन घट मन घट जाय |
मन जु घटे महिमा घटे, घटत २ घटि जाय ||४२०||

ध्यान किये क्या होत है, जो मन मेल न जाय |
बग रु बिल्ली ध्यान धर, पशू पकड के खाय ||४२१||
धन अरु गेंद ज्युं खेल को, दोऊ एक सुभाय ।
कर में आवत छिनक में, छिन में कर से जाय ||४२२||
धन मेलवता दुःख छे, सांचवता पण दुःख ।
जो आवेलूं जाय तो, जाय रूमूलो सुक्ख ||४२३||
धूर्ता होय सुलक्षणा, वेश्या होय सलज्ज |
खारा पाणी निर्मला, ए त्रणि काज अकज्ज ||४२४||
धन थी मन गमतूं मले सुख सहु धन नी साथ ।
सर्व सहे सेवक थई, होय द्रव्य जो हाथ ||४२५||
धन विद्या शुभ वंश जस, तथा राज्य अधिकार ।
कुदरत दे कीन्ताक ने, लक्ष्मी पांच प्रकार ||४२६||
धर्म कर्म ही दीर्घ है, हिंसा दुष्कर काज ।
प्रेमरज्जु बन्धन बडा, समकित सब को साज ||४२७||
धर्म जननि यत्ना कही, धर्म रक्षिका जान ।
तपोवृद्धि मे यतन ही सुख सागर है मान ||४२८||

धन है पिण देवे नहीं, द नहिं निर्मल बैन ।
दान मान युत धन मिले, विरले हैं वे जैन ॥४२९॥
धैर्यवान की मृत्यु भी, है कायर की मृत्यु ।
धैर्य मरण तब श्रेष्ठ है, क्यों हो कायर कृत्य ॥४३०॥
धंदो मिले न धन बिना, धन बिन मिले न धान ।
धान बिना धीरज तजे, बिन मति ने विद्वान ॥४३१॥
धर्मी राजा जो हुए, अथवा पापी जार ।
प्रजा होत उस देस की, राजा के अनुसार ॥४३२॥
धनि रहीम जल पंक को लघु जिय पियत अघाय ।
उदधि वड़ाई कौन है, जगत पियासो जाय ॥४३३॥

न से नः पर्यंत

नारायण संसार में, भूपति भये अनेक ।
मै मेरी करते रहे, ले न गये तृण एक ॥४३४॥
नारायण नरखड में, निर्भय जिनको राज ॥
ऐसे विदित महीप जग, ग्रसे काल महाराज ॥४३५॥

नारायण निज हाथ पै, जे नर धरत सुमेर ॥
सोउ वीर या भूमि पै, भये राख के ढेर ॥४३६॥
नारायण जिनके भवन, विधि सम भोग विलास ।
अन्त समय सब छांड के, भए काल के ग्रास ॥४३७॥
नारायण सतसंग कर, सीख भजन की रीत ।
काम क्रोध मद लोभ में, गयो आयु बल बीत ४३८
नारायण प्रभु भजन मे, तू जिन देर लगाय ।
का जाने या देर मे, श्वास रहे के जाय ॥४३९॥
नारायण बिन बोध के, पंडित पशू समान ।
तासों अति मूरख भलो, जो सुमरे भगवान ॥४४०॥
नारायण तू भजन कर, कहा करेंगे क्रूर ।
स्तुति निंदा या जगत की, दोउन के सिर दूर ४४१
निज स्वारथ के मिल सब, यही जगत की चाल ।
नारायण बिन स्वारथी, हितू नंद को लाल ॥४४२॥
नारायण निज हियय में, अपने दोष विचार ।
ता पीछे तू और के, अवगुण भले निहार ॥४४३॥

नारायण ऐसे घने बके अनाप सनाप ।
दोष लगावै सन्त को आप बाप के पाप ॥४४४॥
नारायण या जगत में, हैं दो वस्तू सार ।
सब से मीठो बोलबो, करबो पर उपकार ॥४४५॥
नारायण परलोक मे, ये दो आवत काम ।
देना मुट्ठी अन्न की, लेना जिनवर नाम ॥४४६॥
नारायण दो बात को, दीजे सदा बिसार ।
करी बराई और की, आप कियो उपकार ॥४४७॥
नारायण कीजे सदा, दुष्ट संग को त्याग ।
जिम लुहार के ढिग परे, बदन चिंगारी आग ४४८
नारायण प्रभु भक्ति की, प्रथम यही पहिचान ।
आप अमानी ह्वै रहै, देत और को मान ॥४४९॥
नारायण दुख सुख उभय, भमत यथा दिन रात ।
बिन बुलाय ज्यों आ रहै, बिना कहें त्यों जात ४५०
नारायण अति कठिन है, हरि मिलबे की बाट ।
या मारग तब पग धरै प्रथम शीश दे काट ॥४५१॥

नर संसारी लगन में, दुख सुख सहे करोर।
नारायण प्रभु प्रीत मे, जो होवे सो थोर ॥४५२॥
नारायण हरि लगन में, यह पांचो न सुहात।
विषय भोग निद्रा हंसी, जगत प्रीत वहुवात ॥४५३॥
नारायण यह प्रेम सुख सों कह्यो न जाय।
ज्यों गूंगो गुड खात है सैनन स्वाद लखाय ॥४५४॥
नहिं विद्या नहिं बांहबल, नहीं गांठ में दाम।
तुलसी ऐसे पतित की, पति राखे श्रीराम ॥४५५॥
नारी की झांई परत, अन्धा होत भुजंग।
कविवर तिनकी कौन गत, नित नारी के संग ॥४५६
नमे सो आंबा आंबली, नमे सो दाडम दाख।
एरन्ड विचारा क्या नमे, ओछी उसकी जात ॥४५७
नृप सज्जन पंडित धनी, नदी वैद्य निज जात।
ए जा पुर में हैं नहीं, तिहां न रहिजे रात ॥४५८॥
नृपति मृतक बिन राज के, विप्र मृतक बिन कर्म।
धन बिन मृतक गृहस्थ है, यती मृतक बिन धर्म ॥

निन्द हमारी जो करे, मित्र हमारा सोय।
साबु लगावे गांठ का, मेल हमारा धोय ॥४६०॥
नाई बामन कूतरा, जात देख घुर्राय।
इन तीनों की नीचता, हम इकला ही खाय ॥४६१॥
निशि दीपक शशि जानिये, रवि दीपक दिन जान।
तीन भुवन दीपक धरम, कुल दीपक सुत मान ॥
नाज पुराना घी नया, मीठी बोली नार।
असवारी घुडला तणी' पुण्य तणा फल चार ॥४६३॥
नदी तीर को वृक्ष ज्यों, राजा मन्त्री हीन।
नष्ट होय पर घर त्रिया, अवश्य शीघ्र ही तीन ४६४
नृप याचक गणिका अगिन, वैद्य बाल जनपात।
पर दुःख न जानत कदा, पुण्य सदन यमभ्रात ४६५
नेम धरम हुका ने खोया, पगडी खोई साफे ने।
राम नाम मुजरा ने खोया, चोका खोया छांटे ने ॥
नृप नारी अरि चोर जन, कपट कूट चुलगान।
नदी नखी शृंगी अगन, इन विसवास न आन ४६७

नीकी पण फीकी लगे, बिन अवसर की बात।
जिम रण्डापन में नहीं, रस सींगार सुहात ॥४६८॥
निज परसंसा नहिं करे, नहि दुर्जन अपकीर्ति।
पुनः पुनः हंसता नहीं, पावे गुरुपद कीर्ति ॥४६९॥
निष्ठुर नरपति दण्ड में, मन्त्र लीन हो विज्ञ।
मूढ कोप तत्पर रहे, सन्त तत्व में भिज्ञ ॥४७०॥
निद्रा जडता क्रोध भय, आलस दीर्घ विचार।
जो सम्पति चाहे सदा, यह षट दूर निवार ॥४७१॥
नदी पार खेती करे, परघर चोरी जाय।
जिनके पति नादान हैं, ये तीनों विरलाय ॥४७२॥
नैन छुपायां ना छुपे, पट घूंघट की ओट।
चतुर नार औ सूरमा, करें लाख में चोट ॥४७३॥
नगर नष्ट सरिता बिना, धाम नष्ट बिन कूप।
पुरुष नष्ट बिन शील के, नष्ट नारि बिन रूप ॥४७४॥
नयना देत बताय सब, हिय को हेत अहेत।
जैसे निर्मल आरसी, भली बुरी कहि देत ॥४७५॥

निष्फल श्रोता मूढ है, कविता वचन विलास ।
हाव भाव ज्यों त्रियन के, पती उन्ध्र के पास ४७६
ज्ञान ना नय में रहे, वर्ष पांच के सात ।
तुलसी द्वादस वर्ष में, जडा मूल सूं जात ॥४७७॥
नहीं चाहो साम्राज्य सुख, नहीं स्वर्ग निर्वाण ।
जन्म जन्म निज धर्म पै, हरषि चढावे प्राण ॥४७८॥
नारी में भोजन द्विगुण, लज्जा चौगुण होय ।
छ.गुण साहस होत है, काम आठ गुण होय ॥४७९॥
हाथे धोये क्या हुआ; मन का मेल न जाय ।
मीन सदा जल में रहे, तऊ वास नहिं जाय ॥४८०॥
निद्रा जडता क्रोध भय, आलस दीर्घ विचार ।
जो सम्पति चाहो सदा, तो षट दूर निवार ॥४८१
नीच निचाई ना तजे, साधू के भी संग ।
तुलसी चन्दन निकट वसी, विष नहीं तजत भुजंग॥
नारी निन्दा मत करो, नारी नर की खान ।
नारी से पैदा हुए. चौवीसों भगवान ॥४८३॥

नहिं दरिद्र उद्योग पर, जप ते पातक नाहिं ।
कलह रहे नहिं मौन में, नहिं भय जागत मांहि ॥
नर में नाई धूर्त है, वायस पक्षी मांहि ।
चौपायन मे स्यार है, मालिन नारि लखाहिं ॥४८५
नयनन देखे जगत को, नयना देखे नाहिं ।
ताहि देखजो देखता, नयन करों के माहिं ॥४८६॥
नीर बुझावे अग्नि को, जरे होकनी माहिं ।
देह माहिं चेतन दुखी, निज गुण पावे नाहिं ४८७
निश्चय करि जाने सवै, क्रोध पाप को मूल ।
जो यांके आधीन नर, सहे महा दुख सूल ॥४८८॥
निन्द्रा तेनी नव गमे, जेमा जेने स्वाद ।
निन्दा कीधे व्यसन नी, व्यसनी धरे विषाद ॥४८९॥
नृप रैयत ने लूटता बलि तस्कर नी जात ।
वाड खेतने खाय त्यां, वनचर नी शी बात ४९०
निज उद्यम सहु आदरे, डरे न दिल मां कोय ।
हाथी मावत ने हणे, बीजो तुरतज होय ॥४९१॥

निज २ कारज मां कुशल, ते विशेष वखणाय ।
नाचे गाते नट भला, न्याय करे ते राय ॥४९२॥
नसिब २ सौ को कहै, पण नक्की नहि आस ।
चूला शा मांडे करे, जो नसीब विसवास ॥४९३॥
निश्चय नियम प्रमाण मां, कसर करी न सकाय ।
रंग जेटलो नाखिये, तेकूं पट रंगाय ॥४९४॥

प से पः पर्यन्त

परालब्ध पहिले बना, पीछे बना शरीर ।
तुलसी यह आश्चर्य है, मन नहि बांधे धीर ॥४९५॥
पानी वाढो नाव मे, घर में वाढो दाम ।
दोनों हाथ उलीचिये यही सयानो काम ॥४९६॥
पढ पढ कर सब जग मुआ, पंडित भया न कोय ।
ढाई अक्षर प्रेम के, पढे सो पंडित होय ॥४९७॥
पंडित केरी पोथियां, ज्यों तीतर को ज्ञान ।
औरें शकुन बतावई, आपहि फंदन जान ॥४९८॥

पानी केरा बुल्बुला, इस मानुष की जात।
देखत ही छिप जांयगे, ज्यों तारा परभात ॥४९९॥
पाप छुपायां ना छिपे, छिपे तो मोटा भाग।
दावी दूवी ना रहे, रुई लपेटी आग ॥५००॥
प्रेम छिपाया ना छिपे, जा घट परगट होय।
जो पै मुख बोले नहीं, तो नयन देत है रोय ॥५०१॥
पतिव्रता पति को भजे, ताहि न और सुहाय।
सिह बच्चा जो लंघना, तोभी घास न खाय ॥५०२॥
पारस में और सन्त में, बडो अन्तरो जान।
वह लोहा कंचन करे, वह करे आप समान ॥५०३॥
प्रिय भाषण पुनि नम्रता, आदर प्रीति विचार।
लज्जा क्षमा अयाचना, ये भूषण उर धार ॥५०४॥
परदूषण में मन धरे, परभूषण में वैर।
सो मलेच्छ मूरख अधम, धरत नरक में पैर ॥५०५॥
पूत कपूत कृपण नर, कपटी मित्र कुनार।
चार हुं संगति सूलि सम, बुध जन कहत विचार ॥

पर नारी पैनी छुरी, तीन ठोर से खाय।
धन छीजे जोबन हरे, जडा मूल से जाय ॥५०७॥
पर नारी पैनी छुरी, मति लगावो अंग।
रावण जैसा राजवी, विगड्या इण के संग ॥५०८॥
प्रीत जहां पडदा नहीं, पडदा जहां नहीं प्रीत।
प्रीत करी पडदा रखे, वह प्रीत नहीं विपरीत ॥५०९
पितु आज्ञा तत्पर सदा, चलत आप कुल चाल।
पंडित विज्ञ विनीत सो, पुत्र उत्तम नर पाल ॥५१०॥
पतिव्रता नंगी फिरे, वैश्या मल २ खासा।
साधू जन भूखा मरे, धूरत खाय पतासा ॥५११॥
पुण्य हीन को ना मिले, भली वस्तु को जोग।
जब द्राक्षा पकने लगे, तब काग कंठ हो रोग ॥५१२॥
पैसा दे मैथुन करे, भोजन पर आधीन।
खण्ड खण्ड पंडित पनो, जान विडंबन तीन ॥५१३॥
पटसुक्षम तांबुल पुनि, मर्दन मंजन स्नान।
सुगंध आदि ब्रह्मचारी के, दूषण सात पिछान ॥५१४॥

पर कारज कर दुःख सहे, लेवन हरि रस घूंट ;
भार घसीटत और को, आप ऊंट को ऊंट ॥५१५॥
प्यारी अन प्यारी लगे, समय पाय सब बात ।
धूप सुहावत शीत में, ग्रीषम मन न सुहात ॥५१६॥
पहरे ओढे अंगपर, भांत २ ना वस्त्र ।
पैसा माटे प्रेम थी, करे प्रयत्न सहस्त्र ॥५१७॥
पद विहार वार्धक्य है, दैन्य पराभव स्थान ।
मृत्यु तुल्य नहिं भय कहा, क्षुधा वेदना खान ॥५१८
पुत्र शिष्य इक श्रेणि मां, ऋषिगण देव समान ।
मूढ और तिर्यंच भी, एक दीन मृत जान ॥५१९॥
पर नारी सहवास औ, नहीं मूढ को संग ।
स्वाभिमान ते शून्य का, पिशुनि का नहिं संग ५२०
पुनः लोट आती नहीं, ज्यों निशि जानी बीति ।
धर्म करे नहीं मनुज तो, निष्फल निशि यह रीति ॥
पुनः लोट आती नहीं, जो निशि जाती बीति ।
धर्म करे जो मनुज नित, सफल निशा यह रीति ॥

पर नारी ते विरत मन, शिव रमणि ते सक्त |
जीवन पर उपकार मे, धन्य मनुज वे भक्त ||५२३||
पति सिवाय जो इतर की, करे कभी नहिं ध्यान |
ब्रह्मचारिणी सति कही, करते ऋषि भी गान ||५२४||
पुष्कल पुण्य प्रभाव ते, जीव पाय जीवत्व ।
आर्य क्षेत्र कुल जाति औ, पावे धर्म महत्व ||५२५||
पुत्र स्वजन सुख हेतु है, मत समझो रे जीव |
भव भव मां भमते रहें, बन्धन की हो नींव ||५२६||
प्रजा मूल राजा अहे, जनम मूल है कर्म |
प्रकृति मूल संसार है, क्षमा मूल है धर्म ||५२७||
पिसुन छल्यो नर सुजन सों, करत विसवास न चुकि |
जैसे दाझ्यो दूध को, पीवंत छांछहि, फूंकि ||५२८||
प्राण तृपातुर के रहे, थोडे हु जल पान ।
पीछे जल भर सहस्र घट, डारे मिलत न प्राण ५२९
पत्थर पूजे हर मिले, तो मैं पूजूं पहाड |
ताते यह चक्की भली , पीस खाय संसार ||५३०||

पानी आवे नाव में, घर में आवे द्रव्य।
दोनों हाथ उलेचिये, कहत गुणी जन सर्व ॥५३१॥
परमेश्वर से प्रीती राखे, पर नारीसे हंसना।
तुलसी दोनों ना बने, लोट खायरु भसना ॥५३२॥
पच्चिस वीडी रोज की, सो वर्ष नव लाख।
धन धर्म धातू हणे, छाती होवे खाख ॥५३३॥
पापी नर गंगा गया, मन चंचल चित चोर।
पहिला पाप धोया नहीं, दसमण लाया और ॥५३४॥
पुत्र मित्र व्हालो नहीं नहीं रत्न नहीं दाम।
पंडित पण व्हालो नहीं, ज्यारे प्रगटे काम ॥५३५॥
पंडित को पूरब भलो, ज्ञानी को पंजाब।
मूरख को मालव भलो, ढोंगी को गुजरात ॥५३६॥
पीठ पीछे करत बुराई, वोही निन्दक कहावे।
जांसे तो कुत्ता भला, जो सन्मुख भुसता आवे ५३७
परनुं बुरुं ताकतां, निज का होय जरूर।
प्रजालतां हनुमान ने, प्रजल्युं लंकापूर ॥५३८॥

पयः पान अरु पुन्य सर, दान मान सनमान।
यह दस जाडा ही भला, राजा राज दिवान ॥५३९॥
पंच वर्ष लौ लालिये, दशलौ ताडन देइ।
सुताहिं सोलवें वर्ष में, मित्र सरिस गिनिलेइ ॥५४०
प्रजा पाप नृप भोगीयत, प्रोहित नृप को पाप।
तिय पातक पति शिष्य को, गुरु भोगत है आप ५४१
पांच हाथ गाडीन से, दस घोडन से दूर।
ओर हजार हाथीन से, तज हि देश जहं क्रूर ॥५४२॥
प्रातः द्यूत प्रसंगसे, मध्यम स्त्री प्रसंग।
सायं चोर प्रसंग कह, काल गेह तब अंग ॥५४३॥
पामर उचके पालखी, बेसे धनि ना बाल।
हुकम चलावे हांक धरि, पैसा थी महिपाल ॥५४४॥
पिता पास पण वांचता, कन्या लाजे कोई।
जरूर कविता जाणवी, अनिती एवी होई ॥५४५॥
प्रथम जु छेल्ला पगथिये, पग कदी न ठहराय।
एक एक उलंघतां, चढिये तेम चढाय ॥५४६॥

प्रेम न याडी ऊपजे, प्रेम न हाटबिकाय।
राजा परजा जेहि रुचै, सीस देइ लै जाय ॥५४७॥
प्रेम प्रेम सब कोई कहे, प्रेम न चीन्है कोय।
आठ पहर भीना रहे, प्रेम कहावे सोय ॥५४८॥
प्रेप तो ऐसो कीजिये, जैसे चंद चकोर।
चोंच टूटि भुइँ मां गिरै, चितवे वाही ओर ॥५४९॥
पीया चाहे प्रेम रस, राखा चाहे मान।
एक म्यान में दो खड्ग, देखा सुना न कान ॥५५०॥
प्रेम २ सब कोउ कहत, प्रेम न जानत कोय।
जा पै जानहि प्रेम तो, जग क्यों मरता रोय ॥५५१॥
पंडित जन को श्रम परम, जानत जो मति धीर।
कबहु बांझ न जानइ, तन प्रसूत की पीर ॥५५२॥

फ से फः पर्यन्त

फूटी आंख विवेक की, लखैन संत असत।
जां के संग दस बीस है, ताका नाम महंत ॥५५३॥

फल कारज सेवा करे, तजे न मन से काम।
कहे कबीर सेवक नहीं, चहै चौगुणे दाम ॥५५४॥
फल पके मय रस भरे, पुष्प गंध युत पाय।
युवती यौवन देख के, क्यों न मन ललचाय ॥५५५॥
फीकी पण नीकी लगे, कहिये समय विचार।
सब कोही हर्षित करे, ज्यों विवाह में गार ॥५५६॥
फेर न ह्वै है कपट सों, जो कीजै व्योपार।
जैसे हांडी काट की, चढै न दूजी वार ॥५५७॥

ब से वः पर्यन्त

वात बनावै ज्ञान की, भोगन को ललचात।
नारायण कलिकाल के, कौतुक कहे न जात ॥५५८॥
बात बनाई जग ठग्यो मन प्रबोध्यो नांहि।
कबीर यह मन लेगया, लख चौरासी माहि ॥५५९॥
वडो कौन या जगत मे, मै पूछूं यह वात।
ढके दोष जो सवन के, सो जन वडो कहात ॥५६०॥

वहुत भण्यो किस काम को, बोले जो न बिचार।
हणे पराई आतमा, जीभ वहे तलवार ||५६१||
बिन स्वारथ कैसें सहे, कोईके कड़वे वैन।
लात देय पुचकारिये, होय दुधारी धेन ||५६२||
वहता पानी निर्मला, बंधा गंधेला होय।
साधु तो रमता भला, दाग न लागे कोय ||५६३||
बंधा पानी निर्मला, जो जल ऊंडा होय।
साधु तो वैठा भला, दाग न लागे कोय ||५६४||
बडे को दुःख पूर है, छोटे को दुःख दूर।
तारा तो न्यारां रहे, चन्द्र ग्रहत है सूर ||५६५||
बिगडी बात बने नहीं, लाख करो किन कोय।
रहिमन फाटे दूध को, मथे न माखन होय ||५६६||
बिछुडत सूखे कमल से, यही प्रींत का मूल।
जो बिछुडत सूखे नहीं, ताके मुख पर धूल ||५६७||
ब्राह्मण तिया तापसी, बाल रोगी अन्याय।
प्राण दण्ड इनको न दे, यही भूप को न्याय ||५६८||

बढो बडाई ना करे, बडो न बोले बोल।
हीरा मुख से कब कहे, लाख हमारो मोल ॥५६९॥
बाल दशा मां जननी अरु, युवा दशा मां नार।
पुत्र निधन वार्धक्य में, दुःख खान है धार ॥५७०॥
बधिर अन्ध इह लोक में, धन्यवाद के पात्र।
पिशुन वाक्य सुनते नहीं, लखै न दुर्जन गात्र ५७१
बालाग्र नहीं स्थान है, जहां न जन्मा जीव।
नाना विध सुख दुःख को, वेदा तीव्र अतीत ५७२
ब्राह्मण भया तो क्या भया, डाल गले में सूत।
वेद पुराण जाने नहीं, है जंगल का भूत ॥५७३॥
बहुतन को न विरोधिये, निबल जानि बलवान।
मिली भखी जांय पिपीलिका, नागन ही के प्राण ॥
बुरी करे सोई बुरो, बुरो न कोई ओर।
वणिज करे जो वाणियों, चोरी करे सो चोर ॥५७५
वडे वचन पलटे नहीं, वही वीर वही धीर।
कियो विभीषण लंकपति, पाई विजय रघुवीर ५७६

बुरे लगत शिक्षा वचन, हिये विचारो आप।
कडवे औषध बिन पिये, मिटे न तन की ताप ५७७
बडे काम छोटे करे, तउ न बडाइ होय।
ज्यों रहिम हनुमान को, गिरिधर कहे न कोय ५७८
बुरा जो देखन मै चला, बुरा न पाया कोय।
जो मन ढूंडा आपना, मुझ से बुरा न कोय ॥५७९॥
बकरी पाती खात हैं, तिन की कढीज खाल।
जो बकरी को खात है, तिन को कौन हवाल ५८०
बडी को माता गिने बराबरी की बेन।
छोटी को बेटी गिने, ये ब्रह्मचारी के चेन ॥५८१॥
बांस बढो जब ऊपनो, धूजे सब वन राय।
कुल खंपण ऊंचो वध्यो, बोले तरुवर काय ॥५८२॥
बेनी लडाइ मां पडे, जन ते मार्या जाय।
घट्टी नां बे पड विषे, दाणा पड्या दलाय ॥५८३॥
बुद्धि वगर नो मानवी, समझो पशु समान।
वानर ने पण छे जुवो, हाथ पांव मुख कान ॥५८४॥

भ से भः पर्यंत

भीतर सों मेलो हियो, बाहर रूप अनेक।
नारायण तासों भलो, कौवा तन मन एक ॥५८५॥
भले भलाइ पर लहहिं, लहहिं नीचाइ नीच।
सुधा सराहिय अमरता, गरल सराहिय मीच ५८६
भक्तन की महिमा अमित पारन पावै कोय।
जहां भक्त जन पगधरै, असदश तीरथ सोय ॥५८७॥
भटियारी अरु लक्ष्मी, दोनों एके जात।
आवत तो आदर करे, जात न पूछे बात ॥५८८॥
भूप दुखी अवधू दुखी, दुखी रंक विपरीत।
कहे कबीर यह सब दुखी, सुखी संत मन जीत॥
भलो होत नहीं मारबो, काहू को जग माहि।
भलो मारबो क्रोध को, ता सम नर रिपु नाहि ५९०
भारत में होने लगा, जब से बाल विवाह।
बल विद्या बुद्धि घटी, हो गया देश तबाह ॥५९१॥

भय मर्यादा होत है, खुल्ले भय नहीं होय।
खुल्ले मुंह वेश्या फिरे, निर्लज कहे न कोय ॥५९२॥
भली करत लगती विलम, विलम न बुरे विचार।
भवन बनावत दिन लगे ढाहत लगत न वार ५९३
भले वंश सन्तति भली, कबहुं नीच न होय।
ज्यों कंजन की खान में, काच न उपजे कोय ५९४
भय लज्जा अरु लोक गति, चतुराई दातार।
जिस में नहीं ये पांच गुण, संगति करो न यार ५९५
भोजन बिच पाणी भलो, भोजन अन्ते छास।
मध्याने भोजन करे, सब रोगनो नास ॥५९६॥
भूधर में मेरु गिरी, एरावत गज मांहि।
वन चर मे ज्यों व्याघ्र है, शील व्रतों में गाहि ५९७
भय या कोपावेश में, हिंसा पर निज अर्थ।
मृषावाद बोले नहीं, नहि बुलावे व्यर्थ ॥५९८॥
भाव भयो निधि नाव है, स्वर्ग मोक्ष निः श्रेणि।
मनो भाव ज्ञाता यही, चिंता मणी सी श्रेणि ५९९

भले बुरे जहां एक से, जहां न बसियो जाय।
जो अन्याय पुर में विके खांड गुड एके भाव ॥६००
भेख बनावे सूर को, कायर सूर न होय।
खाल उढाये सिंह की, स्याल सिंह नहीं होय ६०१
भली जीविका लाज भय, और दक्षता दान।
ये पांचो जहां नहीं तिहां, करे न संग सुजान ६०२
भणी ने सुधरे बालपन तो, जीवतर-उत्कर्ष।
चोमासुं सुधर्या थकी सुधरे आखुं वर्ष ॥६०३॥
भांत २ ना भोजनों, करी राखे कंदोई।
जेने भावे जे घणुं, जमे लईने ते जोइ ॥६०४॥
भलो भणेलो भूपति, रूडो हतो नलराज।
तोहु अधम धन्धो अति, कर्यो पेटने काज ॥६०५॥
भणतर से भागे नहीं, भूख तरश ना भोग।
दिलगीरि उपजे दस गुणी, जो तजई उद्योग ॥६०६॥
भक्ति गेंद चोगान की भावे कोई लेजाय॥
कह कबीर कछु भेद नहिं कहा रंक कहां राय ॥६०७॥

म से मः पर्यंत

मान वडाई ईरषा, मन में भरी अनेक ।
नारायण साधु बने, देखो अचरज एक ॥६०८॥
मन लग्यो सुख भोग में, तरन चहे संसार ।
नारायण कैसे बने, दिवस रैनि को प्यार ॥६०९॥
मन में लागी चट पटी, कब निरखे घनश्याम ।
नारायण भूल्यो सभी, खान पान विश्राम ।६१०
मकरी उतरे तार सं, पुनि गह चढत जो तार ।
जांका जासो मन रम्यो, पहुंचत लग न वार ६११
मोह महा दुःख रूप है; ताको मार निकार ।
प्रीती जगत की छोड दे, तब होवे निस्तार ॥६१२॥
मांगन मरण समान है, मत कोई मांगो भीख ।
मांगन से मरना भला, यह सत गुरू की सीख ६१३
मन को परबोधिये, मन ही को उपदेश ।
जो यह मन वश आवही, तो शिष्य होय सब देश

मन के मारे बन गये, बन तज बस्ती माहीं।
कहे कबीर क्या कीजिये, यह मन ठहरे नाहिं ६१५
माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख माहिं।
मनुवा तो दस दिशि फिरै, यह तो सुमरन नाहिं॥
मुख श्रवण दृग नासिका सब ही के इक ठोर।
कहवो सुनवो देखवो, चतुरन को कुछ ओर ॥६१७॥
माणक मोती अरु हीरा, जितने रतन जग मांय।
सब वस्तुको मोल है, मोल बुद्धि को नांय ॥६१८॥
माटी कहे कुम्हार से, क्यों रूंधे तु मोय।
एक दिन ऐसो होयगो, मैं रूंधुगी तोय ॥६१९॥
मन मोती अरु दूध रस, यांको यही स्वभाव।
फाट्या पीछे ना मिले, कोटी करो उपाय ॥६२०॥
मेंख चोर चुनो चुगल लंपटि हठि गमार।
रजक यह समझे नहीं, पडे शीश पर मार ॥६२१॥
मैं जानुं प्रभु दूर है, प्रभु है हृदय माहिं।
आडी ताटी कपट की, तासे दीसे नाहि ॥६२२॥

मर्कट माया मीन मन, मरुत मधुप मद मार ॥
मेघ मानिनी दसयहै, मान हु अथिर मकार ॥६२३॥
मूषक मच्छर मक्षिका, गणिका गणक गंवार ॥
याचक पुनि यह सात नित, पर घर करत विगार ॥
मद्य द्युत कंडू कलह, उद्यम मिथुन अहार ।
निद्रा रोग कुपथ्य को, सेवत बढत अपार ॥६२५॥
मक्खी बैठी सहत पर. पंख लिये लिपटाय ।
हाथ मले सिर को धुने, लालच बुरी बलाय ६२६
मक्खी कहे मै सब से बडी, मारे मूछे डाडी ।
म्हारी परीक्षा जब पडेगी, छाच मिलेगी जार्डी ६२७
मन मरे माया मरे, मर २ जात शरीर ।
आशा तृष्णा ना मरी, कह गये दास कबीर ॥६२८॥
मालाग्रही चाला करे, धन हरवा नु ध्यान ।
ताके पराई नार ते, नही श्रावक शेतान ॥६२९॥
मरे माछली जल बिना, जरां न लागे बार ॥
प्रेम तणा परिणाम मां, आखर ए छे सार ॥६३०॥

मन के मते न चालिये, मनके मते अनेक |
जो मन पर असवार है, वे साधु कोउ एक ||६३१||
मोह प्रबल संसार में, सब को उपजे आय ।
पाले पोषे खग पशु, न देवे कहा कमाय ||६३२||
मन्त्र तन्त्र तन्त्री तिया, पुरुष अश्व घत पाठ |
प्रतिगुण योग वियोगते, तुरत जाइये आठ ||६३३||
मरजाउं मांगु नहीं, निज स्वारथ के काज |
परमारथ के कारणे, मोही न आवे लाज ||६३४||
मधुर वचन से मिटत है, उत्तम जन अभिमान ।
तनिक शीत जल से मिटे, जैसे दूध उफान ||६३५||
मान होत है गुनन ते, गुन बिन मान न होय ॥
शुक कोयल राखे सबे, कागन राखे कोय ||६३६||
माली आवत देख के, कलियां करी पुकार |
कली २ चूनी लिये, काल हमारी वार ||६३७||
माखी मकोडा दुष्ट नर, देखो यांको हेत |
प्राण अपना त्याग कर, औरों को दुःख देत ||६३८||

मोटाने कहवाय नहीं, नाना ने कहवाय ।
सासू मां सोवांक पण, बहुनो वांक कढाय ॥६३९॥
मूरख को समझावते, ज्ञान गांठ को जाय ।
कोयला न हो ऊजला, सो मण साबु लगाय ॥६४०॥
माखी चन्दन परिहरे, दुर्गन्ध होय त्यां जाय ।
मूर्ख नर ने भक्ति नहीं, ऊंघे के उठि जाय ॥६४१॥
माल जेब मा जेटलो, अंते सर्व जणाय ।
हीराने जन जंगली, कंकर कहे शुथाय ॥६४२॥
मुर्दे को भी मिलत है, लकडी कपडा आग ।
जीवित चिन्ता जो करे, वांके बडे अभाग ॥६४३॥
मोक्ष सुख का स्थान है, नरक दुक्ख की खान ।
सदाचार व्रत श्रेष्ठ है, संज्ञा तप को स्थान ॥६४४॥
मुनिगण द्विज पशु वर्ग औ, कामिनि बालक वृद्ध ।
दीर्घ दोष भी यदि करे, वध नहिं कर ही क्रुद्ध ॥
मिथ्यावादी अहि सरिस, नहीं प्रतीती स्थान ।
अपयश का आश्रय लहै, दुःख की है यह खान ॥

मन वाणिज्य हि श्रेष्ठ है, कहते आप्त जिनेंद्र ।
नरक प्राप्ति हो भाव ते, भाव मोक्ष के केंद्र ॥६४७॥
मेरु गिरि औ सरस मां, जितनो अन्तर होय ।
द्रव्य भाव में जान लो, उतनो अन्तर जोय ॥६४८॥
मोह प्रबल ज्यों कर्म मां, रसना इंद्रिय मांहि ।
शील व्रतों मां श्रेष्ठ है, भाव धर्म मां तांहि ॥६४९॥
मन्त्र तन्त्र औ जन्त्र भी, मणि औषध परयोग ।
देव सिद्धि सब भाव पे, भाव बिना है रोग ६५०
मन थी हार्या महीपति, मन थी हार्या रंक ।
हार्या मन थी मुनिसहु, मन ही से महा रंक ६५१
मन के मारे बन गये, बन तज बस्ती मांहिं ।
कहे कबीर क्या कीजिये, यह मन बूझे नाहिं । ६५२
मोहन मोटा देख के, छोटा मती विसार ।
कांटो काढे लघु सुई, पडी रहे तलवार ॥६५३॥
मन मेला तन ऊजला, मुख प' मीठा बैन ।
मोहन ऐसे मित्त से, कौन पाय चित चैन ॥६५४॥

मीठा जल नुं माछलूं, खारे खुशी न थाय।
प्यारा थी न्यारा रहे, प्राण पलक में जाय ॥६५५॥
मूरख कामुख बिम्ब है निकलत वचन भूजंग।
ताकी औषध मौन है, विष नहीं व्यापत अंग ६५६
मुरगी मुल्लां सोंकहे' जिबह करत है मोहि।
साहेब लेखा लेवसी, संकट परि है तोहि ॥६५७॥
मतलब होवे आपणो, तो कई होवेख्वार।
बींदसरोचहे बींदणी, बामण को टकोतैयार ॥६५८॥
माला मुझसे लडपडी, तूं क्यों फेरे मोंय।
तूं फेर मोहि जगत से, तो राम मिलादूं तोय ६५९
मन में कछु बातन कछु, नेनन मे कछु और।
चित्तकी गति कछु ओंर ही, यह नारी की ठोर ६६०
मूरखता अरु तरुणता, है दोउ दुःख दाय।
पर घर वसिवो कष्ट अति, नीती कहत असगाय ॥
मर्यादा सागर तजे, प्रलय होन के काल।
उत्तम साधु छोड़े नहीं, सदा आपनी चाल ॥६६२॥

मूर्ख चिरायु से भलो, जन्मत ही मरिजाय।
मरे अल्प दु.ख होई है, जिये सदा दु:ख दाय ६६३
मात पिता सुत सुन्दरी, दुश्मन थई रहे दूर |
वचन मीठा थी बिन सगो, रहे हमेश हजूर ६६४
माया ठगनी जग ठग्यो, ठगियो देश विदेश |
जिन ठगने माया ठगी, तिग ठग को आदेश ६६५
मांगे घटत रहिम पद, कितो करो बढि काम |
तीन पैर वसुधा करी तऊ बावनो नाम ||६६६||
मूरख गुण समझे नहीं, तौन गुनी में चूक।
कहा घट्यो दिन को विभो, देखे जो न उलूक ६६७
मुर्दे कोभी मिलत है कपडालकडी आग।
जीवित नर चिन्ता करे, वांके बडे अभाग ||६६८||

र से रः पर्यंत

रूप रंग सुंदर घणों, चतुर कुलवति नार।
नारायण तो का भयो, प्रीतम करे न प्यार ||६६९||

रक्षा करी न जीवकी, दियो न आदर दान ।
नारायण ता पुरुष सो, रूख भलो फलवान ||६७०||
राज दुवारे साधु जन, तीन वस्तु को जाय ।
कै मीठा कै मान को, के माया की चाय ||६७१||
रात गंवाई सोय कर, दिवस गंवायो खाय ।
हीरा जन्म अमोल था, कौडी बदले जाय ||६७२||
रहिमन वे नर मर चुके, पर घर मांगन जाय ।
उनसे पहिले वे मरे, जे होवत ही नट जाय ६७३
रूपवती लज्जावती, शीलवती मृदुबेण ।
तिय कुलिन उत्तम सोही, गरिमा धर गुन एन ।
राज भोग सम्पति सुकुल, विद्या रूप विज्ञान ।
अधिक आयु आरोग्यता, प्रगट धर्म फल जान ६७५
राजा बन्धु कुलीन द्विज, चाकर मन्त्रि महन्त ।
थान भ्रष्ट शोभत नहीं, नर नख केसरू दन्त ६७६
राज हंस मृगराज गज, बाजि पुंगि फल पान ।
पंडित ज्ञाता सत पुरुष, शोभत ना निजस्थान ६७७

प्रभू नाम सब कोई जपे, ठग ठाकुर अंह चोर ।
विना प्रेम रीझे नहीं, तुलसी नन्द किशोर ॥६७८॥
रहिमन चाक कुम्हार को, मांगे दिया न देय ।
छिद्रन डंडा डारिके, नांद भले लेलेय ॥६७९॥
रागी औगुण ना गिणे, यही जगत की चाल ।
देखो सब ही श्याम को, कहत बाल सब लाल ॥
निशि को भूषण इन्दु है, दिन को भूषण भान ।
सेवा भूषण दास को, भक्ति भूषण ज्ञान ॥६८१॥
राम न जाते हरिन संग, सीया न रावण साथ ।
जो रहिम भवितव्या होती अपने हाथ ॥६८२॥
रावण सीता को हरे, राम भरत दुःख होय ।
जो कुछ लिख्यो ललाट में, मेट शके नहीं कोय ॥
राग विना नो आरडे, निर्धनियो फूलाय ।
निबलो सब लो गुण करे, ऋणे आटा लूणसमाय॥
राम चरण नारी तणा, चरितारो नहीं छेह ।
गावत २ रोयदे रोवत ही हंस देह ॥६८५॥

राज तिया अरु गुरु तिया, मित्र तियाहू जान ।
निज माता और सासू ये, पांचु मातु समान ६८६
रेशाकर? तुझने सहु, नहीं कहे रस हीण ।
भक्षण करे अमलीं भले, तुजने तजी अफीण ६८७
रावण दुर्योधन तणुं, रह्युं नहीं अभिमान ।
तौ पण ते वातों सुणी, नव समझे नादान ॥६८८॥
रहिमन देखी बडन को, लघु न दीजिये डारी ।
जहां काम आवे सुई, कहा करै तरवारि ॥६८९॥
रहिमन सूधी चाल सों, प्यादा होत वजीर ।
फरजी मीर न हो सकै, टेढे की तासीर ॥६९०॥
रहिमन कहत सुपेट सों, क्यों न भयो तू पीठ ।
रीते अब रीते करत, भरे बिगारत दीठ ॥६९१॥
रहिमन रामन उर धरे, रहत विषय लिपटाय ।
पशु खर खात सवाद सों, गुर गुलिया ये खाय ॥
रहिमन नीचन संग बसि, लगत कलंक हु काहि ।
दूध कलारिन हाथ लखि, मद समुझहिं सब ताहि ॥

रहिमन मन महाराज के, दृग सों नहीं दिवान।
जाहि देखि रीझे नयन, मन तेहि हाथ बिकान ६९४
रहिमन लाख भली करो, अगुनी अगुन न जाय
राग सुनत पय पियत हु, सांप सहज धरि खाय ||
रहिमन निज मन की व्यथा, मन ही राखो गोय।
सुनि हटिले है लोग सब, बांटि न लै है कोय ६९६
रहिमन चुप ह्वै बैठिये, देख दिनन को फेर।
जब नीके दिन आइ है, बनत न लगिहै देर ॥६९७||
रहिमन पानी राखिये, बिन पानी सब सून।
पानी गये न ऊबरै, मोती मानुस चून ॥६९८॥
रहिमन विपदा तू भली, जो थोरे दिन होय।
हित अनहित या जगत में, जानि परत सब कोय ||
अमी पियावत मान विन, रहिमन मो न सुहाय।
प्रेम सहित मरिवो भलो, जो विष देय बुलाय ७००
रहे समीप बडेन के, होत बडे हित मेल।
सब ही जानत बढत है, वृक्ष बराबर बेल ||७०१||

ल से लः पर्यंत

लोभी धन में रत्त है, मूढ काम रत जान ।
मेधावी नर शांति मे, मिश्र तीन में मान ||७०२||
लोचन सह अंजन लसै, सूलक माला संग |
सज्जन जन सत्संग ने, लसै वस्तु को ढंग ||७०३||
लज्जा औ परलोक को, तब लौ गौरव मान |
जब लौ मति में नहि लगै, काम देव के बान ७०४
लेने को हरिनाम है, देने को अन्नदान ।
तरने को आधीनता, डूबन को अभिमान ||७०५||
लक्ष्मी कहे मै नित नवी, एनी पूरूं न आश ।
केइ सिहासन चल बसे, केई भये निराश ||७०६||
लोभ सरिस अवगुण नही, तप नहीं सत्य समान !
तीर्थ नहीं मन शुद्धि सम, विद्या सम धन जान ||
लिखनो पढनो चातुरी, ए सब बातां सहेल ।
काम दहन मन वश करण, गगन चढन मुश्केल ||

लोभ मूल सब पाप को, दु:ख मूल सुमनेह ।
मूल अजीरण व्याधी को, मूल मरण यह देह ||७०९
लाख टकाकी पाव है चार टका की सेर ।
लेखो तो सीधो घणों, समक्षण कोहै फेर ॥७१०||
लाख मूर्ख तजि राखिये, इक पंडित बुध धाम ।
सोभा एक है हंस से, लाख काग किह काम ॥७११||
लोकन के अपबाद को, डर करिये दिन रेन ।
रघुपति सीता परिहरी, सुनत रजक के बैन ||७१२||
लघुता से प्रभुता मिले, प्रभुता से प्रभू दूर ।
कीडी मिश्री खात है, हस्ती फाकत धूर ||७१३॥
लोभ पाप को बाप है, क्रोध क्रूर यम राज ।
माया विष की बेलरी, मनहुविषम गिरि राज ७१४
लोभे लाज घटे घणी, लोभे प्रभु प्रतिकूल ।
लोभे लक्षण जाय छे, लोभ पाप को मूल ||७१५||
लेशन आलस राख सो, जन विद्वान विशेष ।
महनत करी हमेशतो, सुधरे संघ स्वदेश ॥७१६||

वँ से वः पर्यन्त

विद्या वंत स्वरूप गुण, सुत दारा सुख भोग।
नारायण प्रभु भक्ति बिन, यह सब ही हैं रोग ७१७
विद्या पढ करतो फिरै, ओरन को अपमान।
नारायण विद्या नहीं, ताही अविद्या जान ||७१८||
वशीकरण के मन्त्र हैं, नारायण यह चार।
रूप राग आधीनता, सेवा भली प्रकार ||७१९||
विपति परे धीरज गहै, सम्पति में निर्गर्व।
होय समर्थ क्षमा करे, ऐसे होत न सर्व ||७२०||
वचने मारया मरगया, वचने छोड्या राज ।
जे नर वचन पिछानिया, वांका सुधर्या काज ||७२१||
विद्या जोबन रूप धन, और पति का नेह।
राजा पुण्य से मिलत है, मनवांछित सुख येह ७२२
विद्या बल धन रूप यश, कुल वनिता मान।
सभी सुलभ संसार में, दुर्लभ आतम ज्ञान ||७२३||

वखाण तो सुनता रहो, माला फेरो करँभ |
हूंकारा तो देता रहो, पर चित्त तुम्हारा घर मे ७२४
वक्ता ऐसो देखी हैं, जैसो देखो ढोल |
ऊपर से बाजे घणो, फीतर पोलम पोल ||७२५||
वणिक पुत्र कागज लिखे, ह्रस्व दीर्घ नहि देत |
हींग मिरच जीरो लिखे, हंग मर जर लिख देत
वेष बनाये सूर को, कायर सूरन होय |
खाल उढाय सिंह की, स्यालसिंह नहीं होय ||७२७||
विधवा ने शोभे नहीं, काजल तिलक विहार |
सुंदर कपडा पहरना, कंकण मोती हार ||७२८||
विश्वासी को नहीं ठगो, नहिं कर अरि विश्वास |
कृतघ्नी होना नहीं; ज्ञान मर्म यह खास||७२९||
विपत्रत विषय विकार ये, वह्नि ताप समजान |
विषधर व्याघ्र पिशाच सी, होय मृत्यु की खान ||
विषय गृद्ध मधुकर मधुर, कमल कुसुम मे बन्द |
नारी के अनुराग मे, गृद्ध मनुज को फन्द ||७३१||

विमल शील की पालना, दान भाव हुल्लास ।
हित अनहित दु ख ज्ञान भी, पुण्य धर्म आभास ॥
विस्तृत वांसारूढ थे, प्रभू इलायची पुत्र ।
सुनिवर को लख भाव ते, हुए केवली सूल ॥७३३॥
वेर परस्पर नात मां, राखे हलकी जात ।
स्वान जायतो काशीये, नडसे बचमां जात ॥७३४॥
विदेश मां विचर्या बिना, मिले न मान अपार ।
युरोपियन अहीं आवतां, बन्या राज सरदार ॥७३५॥
विमुख भये निन्दा करे, सन्मुख करे बखान ।
वा मनखारी बात को, मती करो परमान ॥७३६॥
विपत बरोबर सुख नहीं, जो थोडे दिन होय ।
इष्ट मित्र और बन्धु सब, जान पडे सब कोय ७३७
विद्या बल है विप्र को, राजा को बल सैन ।
धन वेश्यां को बल बहु, शुद्र सेवा बल एन ॥७३८॥
वारी अजीरण मे दवा, जीरण मे बल दानी ।
भोजन के संग अमृत अरु, भोजनान्त विष मानी ॥

वृद्ध समय जो तिय मरे, बन्धु हाथ धन जाय |
पराधीन भोजन मिले, यह तीनों दु:ख दाय ||७४०||
विद्या सदगुण विनयता, होय चपलता धाम ।
डरे न परदेशे जतां, देखे ते नर दाम ||७४१||
विदेश में विचर्यां बिना मले न मोटू मान ।
समुद्र मां वखणात शुं, सीप तणी संतान ||७४२||
विद्या भणावनार नर, वा औषधी पा नार ।
प्रथम शत्रु सम लागसे, पण अन्तर उपकार ||७४३||
विद्या सघली वांचिते, अंतर समझे आम |
प्रीते नीती पालवी, दाखे दलपत राम ||७४४||

स से स: पर्यन्त

सींग झरे अरुखुर घसे, पीठ न बोझा लेय ।
ऐसे बूढे बैल को कौन बांध भुस देय ||७४५||
सेवाको दोनों भले, एक संत इक राम ।
राम जो दाता मुक्ति को, संत जपावे नाम ||७४६||

सत्य वचन आधीनता, परत्रिय मात समान ।
इतने में हरिना मिले, तुलसी दास जमान ॥७४७॥
सुख का सागर शील है, कोई न पावे थाह ।
शब्द बिना साधु नहीं, द्रव्य बिना नहीं शाह ७४८
सातों शब्द जो बाजते, घर २ होते राग।
ते मंदिर खाली पडे, बैठन लागे काग ॥७४९॥
सौ पापन का मूल है, एक रुपैया रोक ।
साधु होय संग्रह करे, मिटै न संशय शोक ॥७५०॥
सुख के माथे शिला पडै, जो नाम हृदय सेजाय ।
बलिहारी वा दुःख की जो पल पल नाम जपाय ॥
शिर राखे शिर जात है, शिर काटे शिर सोय ।
जैसे बाती दीपकी, कटे उजारो होय ॥७५२॥
सुख को मूल विचार है, दुःख मूल अविचार ।
यह भाष्या संक्षेप से, चार वेद को सार ॥७५३॥
सोच करे सो सुघड नर, कर सोचे सो क्रूर ।
सोच करे मुख नूर है, कर सोचे मुख धूर ॥७५४॥

सुजन तजे नहीं सुजनता, कीन्हे हू अपकार।
ज्यों चंदन छेदतहुहू, सुरभित करही कुठार ॥७५५॥
सत्य वचन भाषे मधुर, और चतुर श्रुति होय।
पति प्यारी अरू पति व्रता, त्रिया जानिये सोय ॥
सुन्दर दान सुपात्र को, बढे शुक्ल शशी तुल्य।
अच्छे खेत सुबीज जिम उपजत आनन्द मूल ॥७५७
स्त्री शिक्षा का नहो, जब तक मित्र प्रचार।
करो हजारों यत्न पर, हरगिज हो न सुधार ॥७५८॥
संपति और शरीर सुख विद्या और वर नार।
निजपूरब के पुण्य बिन, मांगे मिले न चार ॥७५९॥
शास्त्र विशारद चलन गज, शास्त्र युक्त व्यवहार।
अगम निगम सब जानते, सो पंडित निरधार ॥७६०
सकल शास्त्र सार ही गुने, लोभ रहित व्यवहार।
शिष्य हित ही चाहे सदा, सदगुरु सो निरधार ७६१
शिष्यसुधन चाहे हरन, नहीं विवेक नहीं ज्ञान।
यहेतु चेला रंग ले, सो गुरू अधम प्रधान ॥७६२॥

सदा सुहागी नित नवी, अपनी रोटी दाल।
दाम लगे और दुःख परे मीठी और परनार ॥७६३॥
सहज शत्रु है मनुज के, चिर निद्रा तन रोग।
ऋण लालच संताप छल, क्रोध मदादिक भोग ७६४
स्वावलंब समदर्शिता, स्वाभिमान सनमान।
सुरुचि सत्य सेवा सतत, सज्जन की पहिचान ॥७६५॥
समझा मारग एक है, बिन समझा है धोका।
राम कहो रहिमान कहो, चांवल कहो या चोखा॥
सत्य शील संन्तोष तप, दया रु तृणा दान।
क्षमा अहिसा शौच दश, लक्षण धर्म बखाण॥७६७॥
शिष्य सखा सेवक सचिव, सुतिया शिखवन सांच।
सुनी करी पुनि परिहरि, पर मनरंजन पांच ॥७६८॥
साहेब के दरबार में सांचे को सिरपाव।
झूंठा तमाचा खायगा, क्या रंक क्या राव ॥७६९॥
साधु भूखे भाव के, धनके भूखे नांय।
जो साधु धनके भूखे, वे साधु हैं नांय ॥७७०॥

सुखी जगत में कौन हैं, कहो मोहि समझाय ।
होय लीन भगवान में, सुखी वही जगमाय ॥७७१॥
शिष्य हमारे चार हैं, दोय हाथ दोय पांय ।
तन मन से सेवा करें, धूपगिणे नहीं छांय ॥७७२॥
सुत सोई पितु सेवरत, तिय सोई पति लीन ।
विपति सहायक मित्र सो, मिलत पुण्य ते तीन ॥
शीतल पातल मंद गति, अल्प आहार निरोष ।
ये तिरिया में पांच गुण, ये तुरंग मे दोष ॥७७४॥
सधन सगुण सधरम, सगण सुजन सबल महीप ।
तुलसी ये अभीमान बिन, हैं त्रिभुवन के दीप ७७५
सरल पणुं समझे नहीं, आडा अवला जाय ।
दुर्गुण ना सरदार पण, गुण पोतानां गाय ॥७७६॥
सज्जन वचन दुर्जन वचन, अन्तर बहुत लखाय ।
ये सब को नीके लगें, वे काहूको न सुहाय ॥७७७॥
सेवक सोइ जानिए रहे विपत मे संग ।
तन छायां ज्यों रूप में, रहे साथ इक रंग ॥७७८॥

सरस्वती भण्डार की, बडी अपूरब बात।
ज्यों खरचे त्यो त्यों बढे, बिन खरचे घट जात ७७९
सब देखे गुण आपने, एब न देखे कोय |
करे उजालो दीप पर, तले अंधेरो होय ॥ ७८०॥
शीलवान भूषण बिना, धर्म बिना मुनि वर्ग।
लज्जा युत नारी लसै, सचिव बुद्धि को सर्ग ||७८१||
शिष्य परीक्षा विनय ते, वीर युद्ध मे जान।
विपद समय मे सुहृद की, दुष्काले हो दान | ७८२
सत्य धर्म धन पूर्ण जों, कहै न अनृत बैन ||
तप नियमो युत सन्त की, विषम दशा सम दैन ||
सलिल पूर्ण सरिता सभी, रत्नाकर घर जाय।
मरु तल रूखा वस्तुतः भरे भरे को आय ||७८४॥
सत्य धर्म को तोष सुख, मनुज सार आरोग्य।
तत्वातत्व विमर्श है, विद्या सार सुयोग्य ॥७८५॥
शील श्रेष्ठ कुल वंश से, शील रहित क्या वंश।
पंक जात पंकज हुए, नहीं कलुष को अंश ||७८६||

शील रहित नारी जनम, मरणो ही है श्रेय ।
शील वंश श्रृंगार है, शील धर्म सौंदर्य ॥७८७॥
सज्जन गण सत्संगति, कमला ही है खास ।
नलिनी दल जल बिंदुवत, ये सब विषय विलास ॥
शुभ्रकीर्ती हो सत्य से, बढता है विश्वास ।
अपवर्गादिक सुख मिले, धन आश्रय है खास ॥७८९
शुद्ध भावना भाय के, अष्ट कर्म कर नास ।
कुछ क्षण मां ज्ञानी भये, प्रश्न चन्द्र मुनि खास ॥
सीख शरीरां ऊपजे, दइ न उपजे शीख ।
अण मांग्या मोती मिले, मांगी मिले न भीख ७९१
सायर सूर सपूत को बोली में लख जात ।
कायर क्रूर कपूत को, चहरो चुगली खात ॥७९२॥
शुभ तरुवर ज्यों एक ही, फल्यो फूल्यो सुहाय ।
सब वन को प्रमुदित करे, त्यों सपूत गुण राय ॥७९३
सबसे आगे होय के, कबहू न करिये बात ।
सुधरे काज समान फल, बिगरे गारी खात ॥७९४॥

समय समझि जो कीजीये, काम वही अभीराम।
सैंधव मांग्यो जीमते, घोडे को कह काम ॥७९५॥
सत्य नाम को छोडकर, करे ओर को जाप।
वेश्यां केरा पूत जो, कहे कौन को बाप ॥७९६॥
सती न पीसे पीसना, जो पीसे सो रांड।
साधु भीख मांगे नहीं, जो मांगे सो भांड ॥७९७॥
स्वामी होने सहज है, दुर्लभ होने दास।
गाडर लाये ऊन को, लागी चरण कपास॥७९८॥
सुजन कुसंगति दोष तें, सज्जनता न तजत।
ज्यों भुजंग गण हू, चन्दन विष न धरन्त॥७९९॥
सेव्यो छोटो ही भलो, जांसे गरज सराय।
कीजे कहा समुद्र को, जासे प्यास न जाय॥८००॥
सुधरी बिगडे बेग से, बिगडीं फिर सुधरे न।
दूध फटे कांजी फटे, सो फिर दूध बने न॥८०१॥
शूर वीर पंडित पुरूष, रूपवती ओर नार।
ये तीन हु जहां जात हैं, आदर होत अपार ॥८०२॥

सोबत बाकी कीजिये, बेठां शोभे पास ।
वदनामी आवे नहीं, लोक कहे शावास ॥८०३॥
शब्द सरीखा धन नहीं, जो कोइ जाणे बोल ।
हीरा तो दामे मिले, पण शब्द न आवे मोल ८०४
सत्य सांचवे तेहने, खल जन शुं करनार ।
केम श्वान करडी सके, जे गज शिर असवार ॥८०५॥
सिंह गमन पुरुष वचन, केल फले इक वार ।
त्रिया तैल हमीर हठ्ठ, चढे न बीजी वार ॥८०६॥
सूर्य चन्द्रनी आकृति, कदी नहीं पलटाय ।
हठे नहीं गरुड नी गति, सती शरण नहीं थाय ॥
सोना ने सुख पींजरे, मनहर मेवो खाय ।
तो पण पामर कागडो, मांस जोइ ललचाय ॥८०८॥
स्वाभावनुं ओसड नथी, करो उपाय अपार ।
वली जाय पण सिंदरी, वल मेले न लगार ॥८०९॥
शक्ति छतां पण अवरनां, दुःख नवि टाले जेह ।
शरद ऋतु ना मेघ सम, फोगट गाजे तेह ॥८१०॥

साहस प्राक्रम बुद्धि वल, उद्यम धैर्य जू होय ।
तो डरता रहे देव पण, जीत सके नहीं कोय ८११
सौ इच्छे छे सुजसने, अपजस इच्छा नोय ।
न्हाय कंकूनो चांदलो, काजल नो नही कोय ८१२
सिखामण लागे नहीं, ज्यारे विनाशें काल ।
समझाव्यो समझे नहीं, लंकानो भूपाल ॥८१३॥
सुख दुःख सर्वे सांचिये, सुण जूना इतिहास ।
राज्य मिले कोई एक दिन, कोइ दिवस बनवास ॥
सिरपर शत्रु ज्यां सुधी, गरज बीजानी होय ।
दाढ गये सगडी तणो, बातन पूछे कोय ॥८१५॥
सुनने वाला बहुत मिला, पण श्रद्ध ने वाला थोडा।
सुन २ के लातां मारे, परजापत का घोडा ॥८१६॥
शशि रवि गौ घन अरु, धरनी पर्वत संत ।
एते पर उपकार हित, विचरें बुद्धिवन्त ॥८१७॥
सांच बराबर तप नहीं, झूंठ बराबर पाप ।
जांके हृदय सांच है, ताके हृदय में आप ॥८१८॥

सन्त सन्तापे क्षण टले, धर्म सुख ने वंश ।
नहीं मानों जइ पूछिये, रावण राजा कंश ॥८१९॥
साधु हो संग्रह करे, दूजा दिन को नीर ।
तरे न तारे ओर को, कह गये दास कबीर ॥८२०॥
शीष कान मुख नासिका, ऊंचा ऊंचा नांव ।
सहज हू नीचे कारणे, सब कोइ पूजे पांव ॥८२१॥
सिहणी एको सुत जणी, निर्भय थई अपार ।
खरी खरा दस पुत जण, वहे गार को भार ॥८२२॥
शूर वीर के वंश में, शूरवीर सुत होय ।
ज्यों सिहनी के गर्भ मे, स्याल न उपजे कोय ८२३
सबे सहायक सबल के, कोउन निबल सहाय ।
पवन जगावत आग को, दीपक देत बुझाय ॥८२४॥
सत्य वचन अरु दीनता, परस्त्री मात समान ।
इन पर मुक्ति ना मिले, तुलसी दास जमान ॥८२५॥
सत्य सन्ताइयु ना रहे, खरो जुवो ए खेल ।
जेम ऊपर आवे तरी, जल तलिये थी तेल ॥८२६॥

संपत गइते सांपडे, गया वले छे व्हाण ।
गत अवसर आवे नहीं, गया न आवे प्राण ॥८२७॥
शत्रु शस्त्र भुजंग अरु रोगन समझो छोट ।
सावधान यां सु रहो करे बखत पर चोट ॥८२८॥
सुख के माथे सिला परे, जो नाम हृदय से जाय ।
बलिहारी वा दुःख की, पल पल नाम रटाय ॥८२९॥
स्वर्गिय चिन्ह मनुष्य के, यही चार पहिचान ।
मधुर वचन गुरुभक्तिरु, दान संत को मान ॥८३०॥
स्वान पूंछ सम जीवनो, विद्या विनु है व्यर्थ ।
डंस निवारण तन ढकन, नहीं एको सामर्थ ॥८३१॥
शक्ति हीन साधु बने, ब्रह्मचारी धन हीन ।
रोगी सुर प्रेमी तिया, वृद्ध पतिवृत कीन ॥८३२॥
सत्य वचन प्रिय बोलके, कठिन कहे नही कोय ।
कनक दान से भी अधिक, कीमत उसकी होय ८३३
सुख चाहो विद्या पढो, विद्या सुख की खान ।
तीन लोक की संपदा रही ज्ञान में आन ॥८३४॥

स्वाद हशे जे संपमां, हरडे जेवी होय ।
करशे गुण कोइ अवसरे, कहे तुरत नही होय ॥८१५
संप करे कीमत वधे, घटे करे मन रीस ।
थाय अरु सुख फरवे, लेसठ ना छत्रीश ॥८३६॥
संप थकी सुख ऊपजे, संप थी जाय कलेश ।
जे नर ने घर संप नहीं, लेशे . ख नहीं लेश ॥८३७
संप सजो सज्जन सहु, सपे बहु सुख थाय ।
संप विना उद्योग सहु, जरूर निष्फल जाय ॥८३८॥
सघला जन आजगत मां, कदीन सुधरन हार ।
खाडा टब्बा बगर नी पृथ्वी नथी थनार ॥८३९॥
स्वदेह तेम स्वदेशनी, ले नहीं जे संभाल ।
चोंटे तेने चांदले, गांडा केरीगाल ॥८४०॥
सौ सौ ना उद्यम विषे, फाये सौनो दाव ।
थलमां चाले गाडली, जलमां चाले नाव ॥८४१॥
सूम तणी सेवा थकी, के भिक्षा थी भ्रात ।
वली वसतां कुग्राम में, दरिद्रता नहिं जात ॥८४२॥

सहायता शी सर्वदा, कराय झझूं काम ।
चश्माथी देखे घणुं, दृष्टि दलपत राम ॥८४३॥
शोध कीधां थी सांपडे, नही नशीब आधार ।
शोध कर्या थी सांपड्या, आग गाडी ने तार ॥८४४॥
साहस कारज जे करे, तेनी निन्दा थाय ।
पण जो आवे फावतुं, तो विशेष वखणाय ॥८४५॥
सिद्धि न पामें समय बिन, कैक काम कर नार ।
फले रसाल न ऋतु बिना, एता राज कुमार ॥८४६॥
सिंह रूप राजा हुए, मन्त्री वाघ समान ।
चाकर गिद्ध समान तब, प्रजा होंय क्षयमान ८४७
साधु ऐसा चाहिये, जैसा सूप सुभाय ।
सार सार को गहि रहै, थोथा देइ उडाय ॥८४८॥
साधु कहावन कठिन है, ज्यों खांडे की धार ।
डगमगायतो गिरि परे, निश्चल उतरे पार ॥८४९॥
सिंहन के टोले नहीं, हंसन की नहि पांत ।
लालनकी नहीं बोरियां, साधु न चले जमात ८५०

सुजन कुटुंब परिजन बढे, सुत दारा धन धाम।
महा मूढ विषयी भयो, चित अकर्ष्यो काम ॥८५१॥
सुस्वर कोकिल रूप है, तिनय पतिव्रत रूप।
विद्यारूप कूरूप को, क्षमा तपस्वी रूप ॥८५२॥

ह से हः पर्यन्त

हंसा बगुला एक रंग. मान सरोवर मांहि।
बगुला ढूंढे माछली, हंसा मोती खांही ॥८५३॥
हाड जले ज्यों लाकडी, केश जलैं ज्यों घास।
सब जग जलता देखके, भये कबीर उदास ॥८५४॥
हस्तिदंत कमान सर, समरथ वचन प्रवीन।
जुग चहो पलटत रहे, ये नहिं पलटें तीन ॥८५५॥
हित हु कि कहिये न तिहि, जो नर होय अबोध।
ज्यों नकटे को आरसी, होत दिखाये क्रोध ॥८५६॥
हम जाने थे खांयगे, बहुत जमी बहुमाल।
ज्यों का त्यों ही रह गया, पकरी ले गया काल ८५७

होय बुराइ से बुरो, यह कीनो निरधार ।
खाड खनेगो ओर को, तांको कूप तैयार ॥८५८॥
हरत देवता निबल अरू, दुर्बल ही के प्राण ।
व्याघ्र सिंह को छोडके, लेत छाग बलिदान ॥८५९॥
हिये दुष्ट के बदन ते, मधुर न निकसे बात ।
जैसे कडवी बेलडी, को मीठे फल खात ॥८६०॥
हस्ती दन्त नारी वचन, प्रीत कपट नी जेह ।
अंतर मानें बहिर मां, जुदा जुदा हैं तेह ॥८६१॥
हलदी जरदी ना तजे, खट रस तजेन आम ·
तुलसी तो अवगुण तजे, गुण को तजे गुलाम ८६२
हिंसा ते धर्म हि नसै, स्तैन्य कर्म ते देह ।
पर प्रमदा आसक्त ते, अधमा धम गति गेह ॥८६३
होय प्रमाणिक पणुं घणुं, अलि उद्योगी अंग ।
दरिद्रता ने दूर करी, सुखनो पामे संग ॥८६४॥

ज्ञान

ज्ञान लहोरे प्राणियां, तासे शिव सुख हीय।
ज्ञान बिना नर बापरा, मुक्ति न जावे कोय ॥८६५॥
श्री जिनराज बखानिया, दशवकालिक मांय।
प्रथम पढो तुम ज्ञान को, जासे शिव सुख थाय ॥
ज्ञान रूप है मनुज को, और रूप नहीं कोय।
ज्ञान बिना नर बापडा, गया जमन को खोय ॥८६७
ज्ञान गुप्त धन जगत में, चोर न लूटे कोय।
सज्जन तो बॉटे नहीं, कबहूं न रीता होय ॥८६८॥
कोस बडा है ज्ञान का, इस का नहीं है पार।
खरचत ही वढे सदा, सञ्चय लहै विकार ॥८६९॥
ज्ञान बिना नर ढोर है, जैसा जंगल रोज।
होश नहीं है आप का, कैसे आतम खोज ॥८७०॥
ज्ञान विना निष्फल जनम, श्वान पूंछ जिमि जान।
मशक दूर होवे नहीं, वृथा जन्म इम जान ॥८७१॥
ज्ञान बिना नर अन्ध है, देखो हृदय विचार।
सत्यासत्य विवेक नहीं, कैसे हो भवपार ॥८७२॥

भय निद्रा अरु मैथुन हु, पशु नर एक समान ।
मानुष ज्ञान विशेष है, सब में नर परधान ॥८७३॥
ज्ञान बिना आदर नहीं, कोय न माने बोल |
ज्ञान वि ा ार बापडा, इत उत डामा डोल ॥८७४॥
नर भव उत्तम पाय कर, दीपक ज्ञान विचार ।
तीन लोक की सम्पदा, नर भव मांही धार ॥८७५॥
भली बुरी सब वस्तु की, ज्ञान होत पहिचान |
अज्ञानी जाने नहीं, कैसो लाभ अरु हान ॥८७६॥
ज्ञान ज्योति परगट भये, मिठा मृषा अंधकार ॥
अन्तर ज्योति उद्योत हो, तब हो भव के पार ८७७
ज्ञान भानु है जगत में, करत तिमिर को नाश |
जब घठ ज्योति प्रकाश हो, होत जगत को भास ॥
ज्ञानी नर जानत अहे, ज्ञानवान की बात ।
जिमि प्रसूत की वेदना, जानत सुत की मात ८७९
ज्ञानी परिश्रम मूर्ख जन, कबहुं न जानत कोय ।
बांझ तिया जाने नहीं, जनमे वेदन जोय ॥८८०॥

न्हाय धोय सज्जित हुआ, चारू मनोहर वेम।
बिना ज्ञान शोभे नहीं, बिना भूप जिम देश ८८१
तिय नहीं शोभत नर बिना, पुत्र बिना जिम गेह।
बोध बिना तिमि मनुज को, कैसे पाप नसेह ॥८८२
नयन बिना जिमि काजला, शोभत नाहिं लिगार।
बोध बिना तिमि जगत नर, गया जमारा हार ८८३
जग ज्ञानी नर सुघड हैं, करें आत्महित काज।
तेहितें आत्महि शुद्ध करि, पावत सौख्य समाज ॥
पढने मे गुण एक है, अनुभव होत करोड।
इस से मनको रोक कर, ज्ञान बिचारी जोड ॥८८५॥
काम क्रोध को वश करी, भोगन तें मन खींच।
जो तू चाहत आत्म सुख, रत हो ज्ञान के बीच ॥
बिना विचारे ज्ञान के, मत भोंके जिमि स्वान।
मान शत्रु को त्याग के, निज आतम पहिचान ८८७
काम धेनु ज्ञानी पुरुष, ज्ञान दुग्ध दातार।
पान करत सुख ऊपजे, दोष करत है छार ॥८८८॥

विना विचारे ज्ञान के, किये कष्ट वेपार |
पञ्चाग्नि तप तापिया, मिटीन यम की मार ||८८९||
पारस के अरु ज्ञान के, अन्तर अधिक महान ।
वह लोहा कञ्चन करे, वह देवे निरवान ||८९०||
चित्रवेल सम जानिये, ज्ञान तणों भण्डार |
ज्यों निकसे त्यों त्यों बडे, कबहुं न छीज लिगार ||
अनन्त ज्ञान वितराग को, यामे मीन न मेख |
ज्यों घन वरसे तरु फलै, ये ही ओपंम देख ||८९२
गुरु किरपा ते पाइये, ज्ञान तणो भण्डार ।
करो सेव गुरु देव की, हो भव सिंधु पार ||८९३||
जैसे जीव अनन्त है, तैसे ज्ञान अनन्त |
पार न पावे यासु ते, इम भाखे भगवन्त ||८९४||
शास्त्र पढ पढ जग मरा, ज्ञानी भया न कोय ।
मन को वश करि ध्यान कर, गुरु बता वे तोय ८९५

भव वन भटकत पथिक इक, हाथी काल कराल ।
पीछे लाग्यो देख वह, पड्यो कूप विकराल ॥८९६॥
पकड डाल वट वृक्ष की, लटक्यो मुंह फेलाय ।
ऊपर मधु छत्ता लग्यो, बूद पडी मुंह आय ॥८९७॥
निशिदिन दो चूहे लगे, काटे आयु डाल ।
नीचे अजगर फाड मुख, है निगोद भय जाल ॥
चार सर्प चारों गति, चारों ओर रहात ।
है कुटुम्ब माखी अधिक, चूंटन तन दिन रात ८९९
श्री गुरू विद्याधर मिले, देख दुखी भव जीव ।
हो दयाल टेरत उसे, मत सह दुःख अतीव ॥९००॥
बूंद मधु है विषय सुख, तामें लोलुप होय ।
उपकारी वचन नहीं सुने, शुभ अवसर दियो खोय॥
आयुडाल कुछ काल में, कटके गिरगई अन्त ।
पड़ नीचे दुःख कूप मे, भोगे दुःख अनन्त ॥९०२॥
पथिक मर्यो दुःख घोर सह, चित्त विचारो सोय ।
मै जु पडुं भव कूप में, कौन निकाले मोय ॥९०३॥

बारह भावना प्रथम अनित्य भावना

राजा राणा छत्रपति हाथिन के असवार ।
मरना सब को एकदिन, अपनी २ बार ॥१०४॥

अशरण भावना

दल बल देई देवता, मात पिता परिवार ।
मरती विरियां जीव को, कोई न राखन हार १०५

संसार भावना

दाम बिना निर्धन दुःखी, तृष्णा वस धनवान ।
कहू न सुख संसार में, सब जग देख्यो छान ॥ ०६

एकत्व भावना

आप अकेला अवतरे, मरे अकेला होय ।
यों कबहूं या जीव को, साथी सगा न कोय ॥१०७

अन्यत्व भावना

जहां देह अपनी नहीं, तहां न अपना कोय।
घर सम्पति पर प्रकटये, पर है परिजन लोय ॥१०८॥

अशुचि भावना

दीपे चाम चादर मढी, हाड पींजरा देह।
भीतर या सम जगत में, और नहीं घिन गेह ॥१०९॥

आश्रव भावना

जगवासी घूमें सदा, मोह नींद के जोर।
सब लूटे नहीं दीशता, कर्म चोर चहुं ओर ॥११०॥

संवर भावना

मोह नींद जब उपशमै, सतगुरू देव जगाय।
कर्म चोर आवत रुके, तब कुछ बनै उपाय ॥१११॥

निर्जरा भावना

ज्ञान दीप तप तेल भर घर शोधे भ्रम छोर।
याविधि बिन निकसे नहीं, पैठे पूरब चोर ॥९१२॥
पंच महाव्रत संचरण, समिति पंच प्रकार।
प्रबल पंचइंद्रिय विजय, धार निर्जरा सार ॥९१३॥

लोक भावना

चौदह राजु उतंग नभ, लोक पुरुष संठान।
तामें जीव अनादिते, भरमत है बिन ज्ञान ॥९१४॥

बोध बीज भावना

धन कन कंचन राज सुख, सबही सुलभ कर जान।
दुर्लभ है संसार में, एक यथारथ ज्ञान ॥९१५॥

धर्म भावना

जांचे सुरतरु देय सुख, चिंतत चिंता रैन ।
बिन जांचे बिन चितवे, धर्म सकल सुख दैन ॥११६

तीन मनोरथ

आरंभ परिग्रह तजि करि, पंच महाव्रतधार ।
अंत समय आलोयणा, करूं संथारो सार ॥११७॥
तीन मनोरथए कह्या, जो ध्यावे नित्य मन्न ।
शक्तिसार वरते सही, पावे शिव सुख धन्न ११८॥

गुण समस्या

एक २ बकसिंह से, चार कुक्कुट गुण लीन ।
पांच काक ते श्वान षट, गर्दभ से हैं तीन ॥११९॥

सिंह गुण

जो कारज करणीय हैं, बहुत होय वा नेक ।
सर्व यतन से कीजिये, यही सिंह गुण एक ॥१२०॥

बक गुण

करि संयम इन्द्रीन को, पंडित बुगुल समान ।
देश काल बल जान के, कारज करे सुजान ॥९२१॥

कुक्कुट गुण

युद्ध भोग आक्रमण करी, उचित समय पर जाग ।
यही चार गुण कुक्कुट के, देन बन्धु जन भाग॥९२२

कौवा गुण

मैथुन गुप्त अरु धृष्टता, अवसर संग्रह गेह ।
अप्रमाद विश्वास तजी, पंच काक बुध लेह ॥९२३॥

स्वान गुण

बहु अहार थोरे तृपत, सुख सोवत झट जाग ।
छेगुण स्वान के शूरता, अरु स्वामी अनुराग ॥९२४॥

गर्दभ गुण

थक्यो भार ढोयां करे, शीत घाम समझेन ।
गर्दभ के गुण तीन ये, फिरे सदा ही चैन ||१२५||
जो नर धारण करत है, यह उत्तम गुण बीज |
होय विजय सब काम मे, तिन की बीसों बीस ||

प्रश्न

कबीर मन मैलाभया, यामें बहुत विकार ।
यह मन कैसे धोइये, साधो करो विचार ||१२७||

उत्तर

गुरू धोबी शिष्य कापडा, साबुन सरजन हार ।
सुरत शिला पर धोइये, निकसे रंग अपार ||१२८||
ज्ञानी ध्यानी संयमी, दाता शूर अनेक |
जपिया तपिया बहुत हैं, शील वंत कोउ एक ॥१२९

प्रश्न

कहा न अबला कर सके, कहा न सिंधु समाय।
कहा न पावक में जले, कहा काल नहीं खाय ॥९२०॥

उत्तर

सुत नहीं अबला करसके, मन नहिं सिंधु समाय।
धर्म न पावक में जरे, नाम काल नहीं खाय ॥९२१॥

प्रश्न

पान खरंता इम कहे, सुन तरुवर बन राय।
अबके बिछुरे कब मिलैं, दूर पडेंगे जाय ॥९२२॥

उत्तर

तब तरुवर उत्तर दियो, सुनो पत्र इक बात।
इस घर एही रीत है, एक आपत एक जात ॥९२३॥

निशि भोजन

छत्री ब्राह्मण वाणिया, शुद्र वरण बेकार।
ए सहु निशि भोजन करे, नहीं मन मांहि विचार ॥

नारू कारू करसणी, रांक कमीण कुजात ।
नीच गरीब गिंवारजे, ए सहु जीमे रात ॥१३५॥
निरधन मानुष मेहनती, पराधीन परदास ।
क्या इनके वासर निशा जास पराई आस ॥१३६॥
जैन मती श्रावक यति, समकित धरतिहुं पात ।
उत्तम जीमें दिनछते, मध्यम जीमे रात ॥१३७॥
दिनकूं जिमे देवता, जीमे नर परभात ।
राक्षस जीमे रात कूं, बहुत कहू का बात ॥१३८॥
पशु पंखी निशि ना करे, चेतो चतुर सुजांण ।
दोष बहु पातक घणो, सुणज्यो सुगुरू वखाण १३९
कोढ जलोदर वमनता, व्याधि विविध प्रकार ।
मूढमरण स्वर हीनता, उर अनेक आहार ॥१४०॥
सांप बिच्छु घुण सुल सुली माखी मकडी माल ।
चेंटी सूल पंतगिया, जूंझी गरलट लाल ॥१४१॥
इत्यादिक रजनी विषे, होय जीव की घात ।
सुगुरु कह्यो इम जैन में, सुनो धरम के भ्रात ॥१४२

अन्न जल अभक्ष समान है, योग पंथ के न्याय ।
वरसा ऋतु चतुर्मास में, अन्यमति रात न खाय ९४३
सूरज आथमियां पछी, पानी रुधिर समान ।
अन्न मांस सम जाणिये, कही मारकंड पुराण ॥९४४

संकीर्ण प्रकरण

धन देकर तन राखिये, तन दे रखिये लाज ।
धन दे तन दे लाज दे, एक धर्म के काज ॥९४५॥
जिन के सुत पंडित नहीं, नहीं भक्त निकलङ्क ।
अन्धकार कुल जानिये, जिम निशि विना मयङ्क ॥
एक ही अक्षर शिष्य कों, जो गुरू देत बताय ।
धरती पर वह द्रव्य नहीं, जिहि दै ऋण उतराय ॥
पुस्तक पर आप ही पढ्यो, गुरू समीप नहीं जाय ।
सभा न शोभे जार सें, ज्यों तिय गर्भ धराय ॥९४८
वन में सुख मे हरिण जिम, तृण भोजन मल जान ।
देहु हमै यह दीन वच, भाखण नहिं मन आन ९४९

नहीं मान जिस देश में, वृत्ति न बांधव होय ।
नहि विद्या प्रापति तहां, वसिये न सज्जन कोय १५०
पंडीत राजा अरु नदी, वैद्यराज धनवान ।
पांच नहीं जिस देश में, वसिये नाहि सुजान ॥१५१
भय लज्जा अरु लोक गति, चतुराई दातार ।
जिस मे नहीं ये पांच गुण, संग न कीजे यार ॥१५२॥
काम पडे चाकर परख, बन्धु दुःख में काम ।
मित्र परख आपद् पडे, विभव छीन लख बाम १५३
पीछे काज नसावहीं, मुख पर मीठी बात ।
परिहर ऐसे मित्र को, मुख पर विष घट जान ॥१५४
रूप भयो यौवन भयो, कुल हू मे अनुकूल ।
बिन विद्या शोभे नहीं गन्ध हीन ज्यों फूल ॥१५५
कौन काल को मित्र है, देश खरच क्या आय ।
को मैं मेरी शक्ति क्या, नित उठि नर चित ध्याय ॥
तीन थान संतोष कर. धन भोजन निज दार ।
पर संतोष न कीजिये, दान पठन तप चार ॥१५७॥

मित्र दार सुत सुहृद हू, निरधन जन तज देत।
पुनि धन लखि आश्रित हुवे, धन बान्धव करिदेत॥
नेत्र कुटिल जो नारी है, कष्ट कलह से प्यार।
वचन भडकी उत्तर करे, जग बहे निरधार॥९५९॥
जो नारी शुचि चतुर अरु, स्वामी के अनुसार।
नित्य मधुर बोले सरस लक्ष्मी सोइ निरधार॥९६०॥
लिखी पढी अरु धर्मवित, पति सेवा मे लीन।
अल्प संतोषिनि यश सहित, नारिहि लक्ष्मी चीन॥
चरण चलाया मेरु को, त्रिष कियो निर्विष।
ऐसे श्री वर्द्धमान के, चरण नमाऊं शीश॥९६२॥
प्रति बोधित अर्जुन कियो, मेघ कियो मन धीर।
निर्निधान किये सन्त को, नमो नमो महावीर॥९६३
श्रुत जननी श्री शारदा, ब्राह्मी मात सुख दाय।
हृदय कमल में तुम बसा, नमो नमो तुम पाय ९६४
समझां ज्ञान अंकूर है, समझू टाले दोष।
समझ २ संसार में, गया अनंता मोक्ष॥९६५॥

समझु संके पापसुं, अणसमझु हरखंत ।
वह लूखा वह चीकणा, इण विध कर्म बधंत ॥१६६
जल की शोभा कमल है, दल की शोभा पील ।
धन की शोभा धर्म हैं, ज्यों कुल की शोभा शील ॥
साध साध बस नाम है, आप आपकी दौड ।
पांचो इंद्रि बस करे, तो माथे मोड ॥१६८॥
साधु बडे परमारथी, मोटो जिन को मन ।
भर भर मुठी देत है, धर्म रूपीयो धन ॥१६९॥
साधु संगत जब हुए, जागे पुण्य अंकूर ।
कोईक रसायण ऊपजे, तो जाय दलिदर दूर ॥१७०॥
साधु संत का सूपडा, सत्त ही सत्त भापन्त ।
छांड पछाडे तू नडा कणहीं कण रांखत ॥१७१॥
जो ताकूं कांटा बोवे, ताहि बोइ तू फूल ।
तोकों फूल के फूल हैं, वाको हैं तिर शूल ॥१७२॥
ऐसी बानी बोलिये, मनकाआपा खोल ।
औरन को शीतल करे, आपौ शीतल होय ॥१७३॥

जहां दया तहां धर्म है, जहां लोभ तहां पाप
जहां क्रोध तहं काल है, जहां क्षमा तहं आप ९७४
झूठ कबहुं नहीं बोलिये, झूठ पाप को मूल ।
झूठे की कोउ जगत मे, करे प्रतीति न भूल ॥९७५
संचय करिवो है भलो, सो आवे बहु काम ।
पाप न संचय कीजिये, जो अपयश को धाम ॥९७६
श्रम से विद्या पाईये, श्रम ही से धन होइ ।
श्रम ही से सुख होत है, श्रम बिन लहे न कोइ ॥
आलस कबहुं न कीजिये, आलस अरि समजान ।
आलस से विद्या घटे, सुख सम्पति की हान ॥९७८॥
फल कारन सेवा करे, तजे न मन से काम ।
कहे कबीर सेवक नहीं, चहे चौगुना दाम ॥९७९॥
जोगी जंगम सेवडा, सन्यासी दरवेश ।
बिना प्रेम पहुचे नहीं, दुर्लभ सत्गुरु देश ॥९८०॥
जिस जोबन के कारणे, इतना करे गरूर ।
वह जीवन पक माल है, अन्त धूर की धूर ॥९८१॥

अन्याई राजा मिला, जैसे पेड खजूर ।
प्रजाको छांयां नहीं, फल लागे अतिदूर ॥९८२॥
विद्या धन उद्यम विना कहो ज पावै कौन ।
बिना डुलाये ना मिले, ज्यों पंखे की पौन ॥९८३॥
रहे समीप बडेन के, होत बडो हित मेल ।
सब ही जानत बढत है, वृक्ष बराबर बेल ॥९८४॥
पर घर कबहुं न जाइये, गये घटत है जोत ।
रवि मण्डल मे जात शशी, हीन कला छवि होत ॥
एक दशा निवहै नहीं, जन पछिताव हु वोय ।
रवि हू इक दिवस मे, तीन अवस्था होय ॥९८६॥
होय बुराई से बुरो, यह किन्हो निरधार ।
खाड खनेगो और को, ताको कूप तैयार ॥९८७॥
बहुत निबल मिलि बल करे, करे जु चाहैं सोय ।
तृण गण की डोरी करे हस्ति हु बन्धन होय ॥९८८॥
साच जूठ निरणय करे, नीति निपुण जो होय ।
राज हंस विन को करे, क्षीर नीर को दोय ॥९८९॥

क्यों कीजे ऐसो यतन, जांसो काजन होय।
परवत पे खोदे कुआ, कैसे निकसे तोय ॥९९०॥
उद्यम से सब मिलत है, बिन उद्यम न मिलाहि।
सीधी अंगुली घी जम्यो, कबहूं निकसत नाहिं ॥
बुद्धि विना विद्या कहो, कहा सिखावै कोय।
प्रथम गाम ही नहीं तो, सींव कहां से होय ९९२
जाकी जेती पहुंच सो, उतनी करत प्रकाश।
रविज्यों कैसे करि सके, दीपक तम को नाश ९९३
कारज ताही को सरे, करे जो समय निहार।
कब हुं न हारे खेल जो, खेले दाव विचार ॥९९४॥
सब देखे गुण आपने, एब न देखे कोय।
करे उजालो दीप पर, तले अंधेरो होय ॥९९५॥
को सुख को दुःख देत है, देत करम झक झोर।
उरझे सुरझे आप ही, धजा पवन के जोर ॥९९६॥
पीछे कारज कीजिये, पहिले यतन विचार।
बडे कहत है बांधिये, पानी पहिले पार ॥९९७॥

दोष लगावत गुनिन को, जाको हृदय मलीन।
धर्मी को दम्भी कहे, क्षमा शील बलहीन ॥९९८॥
खाय न खरचे सूम धन, चोर सबै ले जाय।
पीछे ज्यों मधु मक्षिका, हाथ घिसै पछिताय ॥९९९
धन अरु यौवन को गरब, कबहुं करिजे नाहिं।
देखत ही मिट जात है, ज्यों बादर की छांहि १०००
अरिहन्त सिद्ध समरुं सदा, आचारज उपध्याय।
साधु सकल के चरण मे, वन्दु शीप नमाय ॥१००१॥
अंगुष्ट अमृत बसे, लब्धी तणा भंडार।
जे गुरु गौतम समरिये, वांछित फल दातार ॥१००२॥

इति दोहा प्रकरण समाप्त

सिद्धा सिद्धिं मम दिसन्तु

